चौथी दुनिया

हिंदी का पहला साप्ताहिक अखबार

www.chauthiduniya.com

मूल्य 5 रुपये

दिल्ली, 30 नवंबर–6 दिसंबर 2009

मुसलमानों की नहीं, मदनी को राजनीति की फ़िक्र है

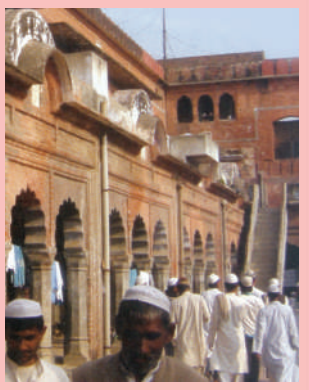

पेज 4

आदिवासियों तक विकास योजनाएं नहीं पहुंच पा रही हैं

पेज 5

पाकिस्तान का दिशाहीन लोकतंत्र और आज़ाद कश्मीर-II

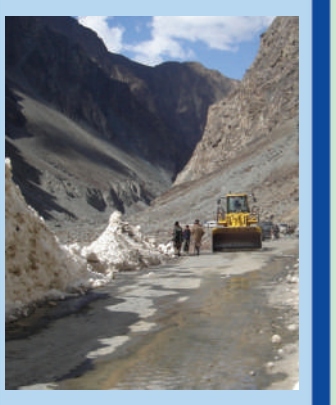

पेज 10

डेढ़ अरब रुपये से ज़्यादा के स्थायी विकास कार्य

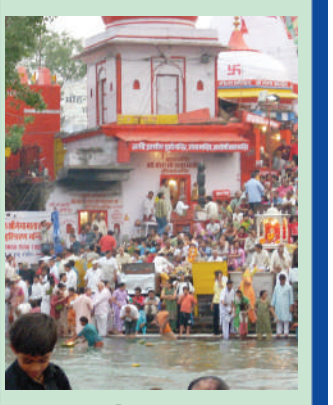

पेज 13

राजबब्बर के ज़ख्मे की जीत

कांग्रेस को उम्मीद नहीं थी और मुलायम सिंह मुग़ालते में थे, लेकिन राजबब्बर पूरी ईमानदारी के साथ अपने मन में जनसेवा की भावना लेकर चुनाव मैदान में उतरे थे. शायद इसीलिए जनता ने जीत का सेहरा उनके सिर बांध दिया.

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

संतोष भारतीय

राजबब्बर फिरोज़ाबाद लोकसभा का उपचुनाव जीत गए, जीते भी शानदार तरीक़े से. मुलायम सिंह यादव के बेटे अखिलेश यादव यहां जितने वोटों से जीते थे, राजबब्बर उससे 25 हज़ार वोट ज़्यादा ले गए. अखिलेश यादव की पत्नी डिंपल यादव, जिन्हें मुलायम सिंह ने अपने परिवार का प्रतीक बनाकर चुनाव में उम्मीदवार बनाया था, हार गईं. दरअसल चुनाव तो ख़ुद मुलायम सिंह लड़ रहे थे और एक बड़े ख़तरे से वे बाल-बाल बचे. तीसरे नंबर पर रहे बसपा के एस पी सिंह बघेल को अगर पंद्रह हज़ार वोट और मिल जाते तो मुलायम सिंह का उम्मीदवार तीसरे नंबर पर चला जाता.

सभी जानना चाहते हैं कि यह कमाल कैसे हो गया, क्योंकि अभी कुछ महीनों पहले हुए लोकसभा चुनाव में राजबब्बर फतेहपुर सीकरी से हार चुके थे. उनकी हार में मुलायम सिंह और अजीत सिंह का सबसे बड़ा योगदान था. इस उपचुनाव में भी मुलायम सिंह और अजीत सिंह ने हाथ मिला लिया था. तो क्या राजबब्बर राहुल गांधी की वजह से जीते, जो उनके चुनाव प्रचार में आख़िरी वक़्त में पहुंचे थे या फिर सलमान ख़ान इसकी वजह बने, जो राजबब्बर के चुनाव प्रचार में जब पहुंचे तो फिरोज़ाबाद में जनसैलाब ने उनका स्वागत किया? फिरोज़ाबाद लोकसभा क्षेत्र में यादव समाज की संख्या सबसे ज़्यादा है, उसके बाद लोध समाज के लोग आते हैं. जाट व मुस्लिम के अलावा यहां अगड़ी जातियों के लोग भी हैं. तो राजबब्बर को किसका साथ मिला, क्योंकि वे तो इनमें से किसी जाति के नहीं हैं? नाम के साथ लगा बब्बर उन्हें पंजाबी बताता है. दरअसल बिना जाति की पहचान वाले राजबब्बर की जीत का संदेश समझने की ज़रूरत है, क्योंकि हो सकता है कि यह संदेश आने वाले जनादेशों का पूर्व संकेत हो.

देखना दिलचस्प होगा कि राजबब्बर के ख़िलाफ़ कौन सी शक्तियां थीं. पहली ताक़त तो ख़ुद कांग्रेस थी, जिसका फिरोज़ाबाद में कोई संगठन ही नहीं था. वैसे कांग्रेस का फिरोज़ाबाद में तो क्या, कहीं भी संगठन है ही नहीं. दूसरी ताक़त मुलायम सिंह थे, जिन्होंने राजबब्बर की राजनैतिक पारी शुरू कराई थी और नब्बे के दशक में राज्यसभा में भेजा था. उनके ख़िलाफ़ उत्तर प्रदेश की सरकार थी, जिसकी मुखिया मायावती चाहती थीं कि वे यह चुनाव जीतकर बसपा का संदेश सारे देश में दें. मायावती ने उत्तर प्रदेश में विधानसभा चुनावों के तत्काल बाद राजबब्बर को बसपा में शामिल होने का संदेश भेजा था, जिसे राजबब्बर ने अस्वीकार कर दिया था. मायावती के प्रमुख मंत्री राजबब्बर को हराने के लिए फिरोज़ाबाद में डटे थे. पर फिर भी राजबब्बर जीते. आइए, इसका उत्तर तलाशते हैं.

सन् बयासी की बात है. हिंदी के उस समय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित साप्ताहिक रविवार ने एक सिनेमा कलाकार के ऊपर कवर स्टोरी की, जिसे बहुत कम लोग जानते थे. रविवार के संपादक एस पी सिंह को विशेष संवाददाता उदयन शर्मा ने समझाया कि यह कलाकार बहुत आगे जाएगा. उस कवर स्टोरी में राजबब्बर के समाजवादी धारा से जुड़े होने, उनकी संघर्षशीलता, उनके सामाजिक सरोकारों का विस्तार से वर्णन था. राजबब्बर के जीवन का वह पहला बड़ा राजनैतिक कवरेज था और संयोग यह कि इसमें कही गईं सारी बातें धीरे-धीरे राज के जीवन की सच्चाई बनती गईं. राजबब्बर को उनके मित्र प्यार से राज कहते हैं.

आगरा से निकलकर राज दिल्ली आए, दिल्ली से बंबई गए, जहां उनका सिनेमा का संघर्ष शुरू हुआ. मशहूर शायर सज्जाद ज़हीर की बेटी नादिरा उनकी ज़िंदगी में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के दिनों में आ गईं. राज ने सिनेमा और नादिरा ने थियेटर को करियर के रूप में चुना. राज क़दम क़दम आगे बढ़े और उन्हें इंसाफ़ का तराज़ू और निकाह के बाद नाम मिला. सिनेमा के इसी सफ़र में उनकी ज़िंदगी में स्मिता पाटिल आईं. राज ने पहली बार दिलेरी से काम लिया और अपने रिश्ते को छिपाया नहीं. स्मिता राज की ज़िंदगी में बहुत कम दिन रहीं और तेज़ बुख़ार की वजह से उनका जीवन दीप बुझ गया, पर जाने से पहले वे अपना और राज का ख़ूबसूरत तोहफा स्मित प्रतीक बब्बर के रूप में राज को दे गईं.

फिर आया उन्नीस सौ सत्तासी. विश्वनाथ प्रताप सिंह ने राजीव गांधी के ख़िलाफ़ अभियान छेड़ दिया. वी पी सिंह उस समय अकेले थे, राजनैतिक तौर पर बिल्कुल अकेले. मज़दूर नेता दत्ता सामंत के निमंत्रण पर वे मुंबई गए. नवभारत टाइम्स के कार्यकारी संपादक एस पी सिंह ने राजबब्बर को सलाह दी कि उन्हें वी पी सिंह का साथ देना चाहिए. राजबब्बर ने इसे मान लिया और जब वी पी सिंह मुंबई हवाई अड्डे पर उतरे तो राज वहां सैकड़ों मोटरसाइकिल सवारों के साथ वी पी सिंह के स्वागत के लिए उपस्थित थे. उनकी और वी पी सिंह की पहली मुलाक़ात महाराष्ट्र सरकार के गेस्ट हाउस सहयाद्रि में हुई, वहां राज को लेकर सीएनबीसी आवाज़ के संपादक संजय पुगलिया पहुंचे थे.

राज ने वी पी सिंह का साथ देने का वायदा पूरी तरह से निभाया और सत्तासी-अट्ठासी में हर उस जगह गए, जहां वी पी सिंह जा रहे थे. वी पी सिंह से अलग भी राज ने अपने कार्यक्रम रखे और वे सिनेमा कलाकार से अलग जुझारू युवक नेता के रूप में उभरे. राज ने उन दिनों फ़िल्मों के शूटिंग शेड्यूल को भी बदलवा दिया था. वे तभी शूट करते थे, जब वी पी सिंह की सभाएं नहीं होती थीं. वी पी सिंह के साथ मिलकर राज ने एक तूफ़ान की भूमिका बनानी शुरू कर दी.

(शेष पृष्ठ 2 पर)

पिछले चार सालों में इस बात पर एक वार्षिक रिपोर्ट तक जारी नहीं हो पाई है कि गुजरात में इस क़ानून का पालन कितना और किस तरह हो पाया है.

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

बाबू लोग ख़फ़ा क्यों हैं?

छत्तीसगढ़ में अचानक तबादले और पदस्थापना के कारण बाबू लोगों में ख़लबली सी मच गई है. जबकि राज्य सरकार प्रशासकीय ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए तबादले और पदस्थापना के काम को अंजाम देती है, लेकिन बाबू इस बात को मानने को तैयार नहीं हैं. वे विशेष तौर पर इस बात को लेकर परेशान हैं कि रमन सिंह की सरकार ऐसे अधिकारियों को पहले भी हाशिए पर डाल चुकी है, जो सरकार से अलग राय रखते थे. सूत्रों के मुताबिक़, अमित कटारिया जो कि रायपुर के निगम आयुक्त के तौर पर काफ़ी लोकप्रिय हो गए थे, उनका रायपुर विकास प्राधिकरण के मुख्य कार्यकारी पदाधिकारी के रूप में तबादला हो गया. बताया जाता है कि स्थानीय मेयर से उनकी ठनी हुई थी. ठीक इसी तरह एम एल हलधर, जो प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना में भ्रष्टाचार के विरुद्ध मोर्चा संभाले थे और ठेकेदारों के ख़िलाफ़ कार्रवाई शुरू कर दी थी, उनसे प्रभार वापस ले लिया गया. ठेकेदारों ने एक तरह से उनके ख़िलाफ़ मुहिम ही छेड़ रखी थी. अब वह राज्य ग्रामीण सड़क विकास एजेंसी में मुख्य अभियंता की ज़िम्मेवारी संभाले हुए हैं. नाराज़ बाबुओं के लिए राज्य सरकार को बेहतर जवाब तलाशने होंगे.

सूचना मांगेंगे तो निराश होंगे

नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली गुजरात सरकार की कार्यकुशलता की जमकर प्रशंसा की जाती है, लेकिन जब सूचना के अधिकार क़ानून को राज्य में लागू करने की बात आती है तो कमियां ही कमियां दिखाई देती हैं. विभिन्न विभागों से सूचना हासिल करने की लोगों की अपीलों पर आंकड़ों के अभाव में राज्य के मुख्य चुनाव आयुक्त आर एन दास स्वयं को विवश पाते हैं. सूत्रों की मानें तो पिछले चार सालों में इस बात पर एक वार्षिक रिपोर्ट तक जारी नहीं हो पाई है कि गुजरात में इस क़ानून का पालन कितना और किस तरह हो पाया है. इससे भी बड़ी बात यह है कि दास अकेले ही विभागीय ज़िम्मेवारी को संभाले हुए हैं. सूचना का अधिकार क़ानून के कार्यान्वयन के लिए दो सूचना आयुक्तों की आवश्यकता है, लेकिन मोदी ने अभी तक इसके लिए नियुक्ति नहीं की है. प्रशासन के सर्वोच्च मुखिया की देखादेखी कई विभागों में भी बाबू लोगों ने, जो पहले विभिन्न स्तरों पर प्राप्त आरटीआई आवेदनों को निपटाने के लिए सूचनाएं अपलोड कर रहे थे, अब अपलोडिंग बंद कर दी है. ऐसे में दास की स्थिति फ़िलहाल एकला चलो रे वाली है.

यूजीसी की परेशानी

मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल ने खस्ताहाल शिक्षा व्यवस्था को सुधारने की कोशिशों को उबाल वाली गति दे दी है. डीम्ड विश्वविद्यालय का दर्ज़ा न पाने लायक निजी संस्थाओं को यह दर्ज़ा देने की वजह से नियामक पर गरजने के कारण विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के चेयरमैन एस थोराट को इस तपिश का सामना करना पड़ रहा है. थोराट यूजीसी को एक गतिशील और प्रगतिशील नियामक का रूप देने की इच्छा रखते हैं, लेकिन कई डीम्ड विश्वविद्यालयों का पुनरीक्षण करने वाले सरकारी पैनल की जो रिपोर्ट है, वह यूजीसी के बाबुओं के मनमाफिक नहीं है. पिछले चार वर्षों में यूजीसी ने 34 संस्थानों को डीम्ड विश्वविद्यालय का दर्ज़ा दिया है.

इनमें से ज़्यादातर निजी संस्थान हैं. लेकिन पुनरीक्षण करने वाली टीम ने पाया कि ज़्यादातर संस्थान यूजीसी के दिशा–निर्देशों की अनदेखी कर रहे हैं. इस बात को लेकर थोराट थोड़े दबाव में हैं.

राजबब्बर के जज़्बे की जीत

पृष्ठ एक का शेष

राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे, ताक़तवर थे. इतना ही नहीं, उनके साथ फ़िल्म जगत के ताक़तवर शहंशाह अमिताभ बच्चन और जावेद अख्तर थे. इन लोगों ने मिलकर अनदेखा दबाव बनाया और राज को फ़िल्मों से बाहर करने की कोशिश की. राज का साथ फ़िल्म जगत के कुछ लोगों ने दिया, जिनमें शत्रुघ्न सिन्हा प्रमुख थे. शत्रुघ्न सिन्हा ने वी पी सिंह का समर्थन अपने अंदाज़ में अलग ढंग से किया.

राजबब्बर छोटी–छोटी जगहों पर वी पी सिंह के समर्थन में गए. वी पी सिंह का क़द बहुत बड़ा था, पर उनके आंदोलन को बढ़ाने में राज का योगदान काफ़ी था. आंदोलन के परिणामस्वरूप वी पी सिंह की सरकार बनी. जब वी पी सिंह का सेंट्रल हाल में चुनाव हो रहा था, तब सेंट्रल हाल में राज ख़ुशी से नाच रहे थे. लेकिन सरकार बनने के बाद राजबब्बर को वे भूल गए, जो सरकार बनने से पहले उनके साथ जाना फ़ख़्र समझते थे. वी पी सिंह भी राजबब्बर को न याद रख पाए. उन राज को, जो चुनाव से पहले उनके परिवार के सदस्य जैसे बन गए थे. दरअसल राज को वी पी सिंह ने किनारे छोड़ दिया था. शायद यहीं से राज के मन में सक्रिय राजनीति में जाने का विचार आया.

फिर आया जनता दल टूटने का न थमने वाला सिलसिला. जनता दल टूटा, मुलायम सिंह और चंद्रशेखर ने नई पार्टी बना ली. बाद में मुलायम सिंह ने तय किया कि वे चंद्रशेखर से अलग पार्टी बनाएंगे और उन्होंने समाजवादी पार्टी बना ली. सुब्रत राय, मुलायम सिंह यादव और अमर सिंह दोस्त थे तथा सुब्रत राय से राजबब्बर की भी दोस्ती थी. तीनों को लगा कि राजबब्बर अगर समाजवादी पार्टी के साथ आते हैं तो उत्तर प्रदेश में सपा को बहुत फ़ायदा होगा. राजबब्बर ने इस प्रस्ताव को अपने लिए एक अवसर माना और अब तक हुई अपनी अनदेखी का जवाब देने की ठान ली. उस समय उनके वी पी सिंह के साथ जाने का कोई सवाल ही नहीं था, क्योंकि न तो वी पी सिंह और न ही उनके साथ के लोग उनसे दोबारा साथ आने का अनुरोध करने जा रहे थे, क्योंकि उन्हें लग रहा था कि जब सत्ता के दिनों में राज को याद नहीं किया तो अब कैसे और किस मुंह से करें.

मुलायम सिंह उत्तर प्रदेश में जीते. मुलायम सिंह ने राजबब्बर के कैंपेन के तरीक़े और उनकी हिम्मत को न केवल सराहा, बल्कि सार्वजनिक रूप से कहा कि वे राज को राज्यसभा में भेजेंगे. मुलायम सिंह ने अपना वायदा निभाया और राजबब्बर को राज्यसभा में भेजा. राज ने हर तरह मुलायम सिंह का साथ दिया. लगभग पंद्रह साल दोनों साथ रहे. अमर सिंह और राज भी उस समय इतने अच्छे दोस्त थे कि किसी को नहीं लगता था कि कभी मुलायम सिंह और राजबब्बर के अलगाव की वजह अमर सिंह बनेंगे. अमर सिंह के ऊपर पहला आरोप राजबब्बर ने ही लगाया और अपनी दूरी का मुख्य कारण बताया. अमर सिंह और राजबब्बर के बीच ऐसे शब्दों का आदान–प्रदान हुआ, जो नहीं होना चाहिए था. दोनों का अलगाव, राजनैतिक के साथ–साथ व्यक्तिगत भी बन गया था.

मुलायम सिंह से अलग होते समय राज के सामने कोई साफ़ राजनैतिक रास्ता नहीं था. कांग्रेस उन्हें संदेशे भेज रही थी, पर अचानक एक दोस्त की सलाह पर वे वी पी सिंह से मिले. वी पी सिंह ने उन्हें भरोसा दिया कि वे राज का साथ देंगे. वी पी सिंह उन दिनों उत्तर प्रदेश में किसानों का सवाल उठा रहे थे. मुलायम सिंह उन्हें वायदा भी कर रहे थे कि वे किसानों की मांगें पूरी करेंगे. पर, कारणों का पता नहीं, लेकिन मुलायम सिंह वायदों को पूरा नहीं कर पाए. राज के वी पी सिंह से मिलने की घटना ने मुलायम के मन में शक़ पैदा कर दिया कि राज को वी पी सिंह उनके ख़िलाफ़ मोहरा बना रहे हैं. वी पी सिंह ने दादरी विद्युत योजना को लेकर अनिल अंबानी के ख़िलाफ़ आंदोलन छेड़ दिया और अनिल अंबानी मुलायम सिंह के दोस्त थे. मुलायम सिंह सख्त हो गए.

वी पी सिंह ने अपने समर्थकों की सलाह पर जनमोर्चा बनाकर राजनैतिक संघर्ष करने का निर्णय लिया और राजबब्बर को जनमोर्चा का अध्यक्ष घोषित किया. राजबब्बर ने उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह के ख़िलाफ़ वैसे ही घूमना शुरू किया, जैसा वे कभी राजीव गांधी के ख़िलाफ़ घूमते थे. उत्तर प्रदेश के हर हिस्से में सभाएं करने के साथ वे दादरी में, जहां किसानों का संघर्ष चल रहा था, लगातार जा रहे थे. आगरा में भी राजबब्बर ने मोर्चा खोल दिया, जहां से वे सांसद थे. पूरे उत्तर प्रदेश में राजबब्बर ने मुलायम सिंह विरोधी माहौल बना दिया और यह सब उन्होंने वी पी सिंह का नाम लेकर किया. वी पी सिंह भी बीमारी के बावजूद ज़्यादा से ज़्यादा सभाओं में जाते थे. माहौल बना मुलायम सिंह के ख़िलाफ़, लेकिन फ़ायदा मिला मायावती को. जनमोर्चा लोगों को यह भरोसा नहीं दिला सका कि वह सरकार बना सकता है. दरअसल जनमोर्चा के पास तो विधानसभा चुनाव लड़ने लायक उम्मीदवार ही नहीं थे. वी पी सिंह कहते थे कि आंदोलन चलाना एक बात है और चुनाव लड़ना दूसरी बात.

विधानसभा चुनावों में मुलायम सिंह हारे और मायावती जीतीं. राज को लगा कि अगर उन्हें आगे कुछ करना है तो कांग्रेस के साथ जाना चाहिए, क्योंकि वी पी सिंह की बीमारी की वजह से जनमोर्चा कभी आगे बढ़ नहीं पाएगा. उन्होंने वी पी सिंह से साफ़ कह दिया कि अब जनमोर्चा के साथ वे नहीं रह पाएंगे. उन्होंने कांग्रेस के टिकट पर फतेहपुर सीकरी से चुनाव लड़ा, क्योंकि आगरा संसदीय क्षेत्र परिसीमन की वजह से सुरक्षित घोषित हो गया था. राज इस चुनाव में हारे.

फिरोज़ाबाद से अखिलेश यादव जीते थे. वे कन्नौज से भी जीते थे. परिवार की, ख़ासकर मुलायम सिंह की सलाह पर उन्होंने फिरोज़ाबाद से इस्तीफ़ा दे दिया. मुलायम सिंह का मानना था कि यादव और लोध वोट मिल कर लाखों की जीत दर्ज़ कराएंगे. उन्होंने रणनीति के तहत फिरोज़ाबाद से अपना उम्मीदवार घोषित नहीं किया.

यहीं मुलायम सिंह से ग़लती हो गई. वे कछुए और खरगोश की कहानी और उसकी सीख भूल गए. राज ने अहमद पटेल और सोनिया गांधी से बात की और फिरोज़ाबाद से लड़ने की इच्छा ज़ाहिर की.

दोनों को लगा कि कांग्रेस का वजूद तो है नहीं, राज लड़ेंगे तो नाम होगा, हलचल होगी और कुछ संगठन मज़बूत होगा. राज ने फिरोज़ाबाद जाना शुरू किया. उनका साथ उनकी पत्नी नादिरा बब्बर ने दिया. राज की बेटी जूही मुंबई छोड़कर आगरा आ गई और फिरोज़ाबाद में घूमने लगी. जूही भी सिनेमा में अपनी पहचान बना चुकी है.

मुलायम सिंह जहां खरगोश की तरह सो रहे थे. वहीं तरह–तरह की ख़बरें अख़बारों में छप रही थीं, जैसे कि यहां से रामविलास पासवान चुनाव लड़ेंगे. राजबब्बर ख़ामोशी से फिरोज़ाबाद के गांवों में घूम रहे थे. उनकी यह मेहनत फिरोज़ाबाद के लोगों पर असर डाल रही थी. उन्हें लगा कि यह शख़्स फ़िल्मों से होते हुए भी फ़िल्मों का नहीं है. इसकी पत्नी और बेटी भी यहां घूम रही है. वे जब राज से मिलते तो उन्हें वे बिल्कुल अपने घर के बच्चे जैसे लगते. राज ने तय कर लिया था कि जीत–हार अलग, पर वे फिरोज़ाबाद के गांवों में जाएंगे ज़रूर. वे कछुए की तरह धीरे–धीरे फिरोज़ाबाद के गांवों में गए, लोगों से मिले, उन्हें विश्वास दिलाया कि वे उनके हैं. जैसे–जैसे वे गांवों में गए, लोगों के दिलों में भी उतरते गए.

राज ने इस चुनाव को वैसे ही आंदोलन के रूप में लिया, जैसा उन्होंने राजीव गांधी के ख़िलाफ़ और फिर मुलायम सिंह के ख़िलाफ़ अभियान को लिया था. दूसरी तरफ़ मुलायम सिंह ने इस चुनाव को केवल चुनाव के रूप में लिया. उन्होंने सोचा होगा कि जैसे ही वे अपनी बहू डिंपल यादव के नाम की घोषणा उम्मीदवार के रूप में करेंगे, यादव समाज उन्मादित हो जाएगा. शायद ऐसा होता भी, क्योंकि यहीं से उनका बेटा अखिलेश अभी कुछ महीनों पहले ही पैंसठ हज़ार वोटों से जीता था. लेकिन यहां राजबब्बर थे, जिन्होंने यहां के लोगों को विश्वास दिला दिया कि वे उनके हैं. लोगों ने ख़ामोशी से तय कर लिया कि वे जाति की सीमा को तोड़ेंगे और राज को जिताएंगे.

मुलायम सिंह को इस बात का अंदाज़ा हुआ, लेकिन काफ़ी देर से. उनकी बहू डिंपल भी नामांकन के बाद काफ़ी घूमीं, औरतों ने उन्हें चूड़ियां और मुंह दिखाई में पैसे दिए, लेकिन वोट उतने नहीं दिए जितने में वे जीत जातीं. मुलायम सिंह की अपीलों का भी कोई असर नहीं हुआ. दरअसल खरगोश सो गया था और कछुआ धीरे–धीरे चल कर चुनावी दौड़ जीत गया था.

राहुल गांधी भी आए और सलमान ख़ान भी. भीड़ भी जुटी और नारे भी लगे. लेकिन अगर राजबब्बर ने महीनों ख़ाक न छानी होती तो इन दोनों का ही नहीं, अगर सोनिया गांधी भी आतीं तो उनका आना भी काम नहीं आता. यह जीत केवल और केवल राजबब्बर और उनके जज़्बे की जीत है.

पर यह जीत सीख देती है. कांग्रेस अगर यह सोचे कि वह कैसे भी उम्मीदवार खड़े करेगी और वह जीत जाएगी तो यह उसकी ग़लतफहमी होगी, क्योंकि साथ हुए विधानसभा उपचुनाव इसके गवाह हैं. उसे उन्हें ही टिकट देना होगा, जो अभी से अपने चुनाव क्षेत्र में काम कर सकें. मुलायम सिंह को भी अपने परिवार से बाहर नज़र डालनी होगी और अस्सी के दशक वाले मुलायम सिंह को वापस लाना होगा. मायावती के सीखने के लिए बस इतना है कि विधानसभा जैसी रणनीति उन्हें लोकसभा में भी अपनानी होगी.

पर यह संकेत उस संकेत से पीछे रह जाते हैं, जो कहता है कि जाति, धर्म और संप्रदाय की दीवारें भी तोड़ी जा सकती हैं, अगर राज जैसे जज़्बे से चुनाव लड़ा जाए तो. फिरोज़ाबाद में जीतने का राज को कितना विश्वास था, पता नहीं. पर किसी और को नहीं था. कम से कम कांग्रेस में यह विश्वास नहीं था कि राज जीत ही जाएंगे. ठीक वैसे ही जैसे मुलायम सिंह को विश्वास नहीं था कि वे हार जाएंगे. राज की जीत के पीछे राजबब्बर का समाजवादी विश्वास, उनका जुझारूपन और अपने को साबित करने की अदम्य लालसा थी, जिसने उन्हें हार मानने को विवश कर दिया, जो अपने को राजनैतिक महाशक्ति समझते थे.

editor@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया
देश का पहला साप्ताहिक अखबार

वर्ष 1 अंक 38, 30 नवंबर–6 दिसंबर 2009

संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210–211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के – 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय

के –2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001

कैंप कार्यालय एफ–2, सेक्टर –11, नोएडा
गौतमबुद्ध नगर उत्तरप्रदेश – 201301

फोन न.
संपादकीय 011–23418962
विज्ञापन + 0120–4783999
प्रसार + 91 9810017924
फैक्स न. 0120–4783950

पृष्ठ–16 (+4 बिहार व झारखंड)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुनः प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

विपक्ष भी तब जागा, जब गन्ना आंदोलन की ख़बर मीडिया में आने लगी और उसकी धमक सत्ता के गलियारों में साफ़ सुनाई देने लगी.

गन्ने की राजनीति और उसके सवाल

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

शशि शेखर

बीते 19 नवंबर को दिल्ली का नज़ारा आम दिनों से अलग था. सड़क पर वाहनों की जगह जनसैलाब. हाथों में गन्ने का पौधा लेकर सरकार के ख़िलाफ़ नारा लगाते हज़ारों किसान. जंतर–मंतर के एक तरफ़ हुक्का गुड़गुड़ाते किसान यूनियन के नेता चौधरी महेंद्र सिंह टिकैत तो दूसरी ओर राष्ट्रीय लोकदल के प्रमुख चौधरी अजीत सिंह अपने–अपने समर्थकों के साथ डटे थे. उसी दिन संसद का सत्र शुरू होकर अगले दिन तक के लिए स्थगित भी हो चुका था. सो, नेताओं के पास समय की कमी नहीं थी. अलग–अलग घाट का पानी पीने वाले विभिन्न नेता यानी समूचा विपक्ष एक साथ, एक ही मंच से यूपीए सरकार का मर्सियां पढ़ने में जुटा हुआ था. ज़ाहिर है, ऐसा मौक़ा बार–बार नहीं मिलता, वह भी बिना कुछ किए–धरे. दरअसल यह सारा विरोध केंद्र सरकार की नई गन्ना नीति को लेकर है. केंद्र सरकार ने एक अध्यादेश पारित किया है, जिसके तहत गन्ने का उचित और लाभकारी मूल्य (एफआरपी) साल 2009–10 के लिए 129 रुपये 85 पैसे प्रति क्विंटल तय किया गया है. साथ ही इस अध्यादेश के मुताबिक़, अगर राज्य सरकारें गन्ने का मूल्य एफआरपी से अधिक तय करती हैं तो उसकी भरपाई भी राज्य सरकार को ही करनी पड़ेगी.

यह मामला इतना सीधा नहीं है. क़ीमत तय करने से लेकर क़ीमत बढ़ाने की मांग और उसके विरोध तक की राह में कई पेंच हैं और सवाल भी. आख़िर पवार ऐसा क्यों चाहते हैं कि पूरे देश में गन्ने की क़ीमत एक हो और उसे तय भी केंद्र सरकार ही करे. क्या वजह है कि विपक्ष इस मुद्दे को तभी समझ पाता है जब गन्ना किसान दिल्ली की सड़कों पर उतर आते हैं? इस मुद्दे पर सिर्फ़ उत्तर प्रदेश और ख़ासकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गन्ना किसान ही क्यों आंदोलन कर रहे हैं? क्या एफआरपी लागू होने से बिहार या महाराष्ट्र के गन्ना किसानों को नुक़सान नहीं होगा? गन्ना उत्पादकों के गढ़ पश्चिमी उत्तर प्रदेश से इस अध्यादेश का विरोध शुरू हुआ है और अहम बात यह है कि अब तक इस आंदोलन की आग किसी अन्य राज्य में नहीं फैली है और न ही किसी वहां के गन्ना किसानों ने इस आंदोलन में भागीदारी की है. भारतीय किसान यूनियन के नेता महेंद्र सिंह टिकैत पिछले कई दिनों से इस ठंड में भी जंतर–मंतर पर डेरा डाले हुए हैं. चौथी दुनिया से बातचीत करते हुए टिकैत कहते हैं कि जब तक सरकार हमारी मांग नहीं मान लेती, तब तक हम यहां से हिलने वाले नहीं हैं. बागपत और मुजफ्फर नगर से आए हज़ारों गन्ना किसान भी मानों पूरी तैयारी के साथ दिल्ली आए हैं. वे ठंड से लड़ने और सोने–बिछाने के लिए गांव से पुआल लेकर आए हैं. दोपहर के खाने में चावल और कढ़ी का इंतजाम रहता है. टिकैत की मांग है कि गन्ने का मूल्य कम से कम 300 रुपया प्रति क्विंटल होना चाहिए. ध्यान देने की बात है कि देश के अन्य राज्यों की अपेक्षा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसान काफ़ी संपन्न माने जाते हैं. रैली में आए कई किसानों से बातचीत के बाद इतना तो तय हो गया था कि चाहे जो हो, इनकी हालत विदर्भ, बिहार या उत्तर प्रदेश के अन्य भागों के किसानों से कहीं बेहतर है.

जब इस आंदोलन की ख़बर मीडिया में आने लगी और इसकी धमक सत्ता के गलियारों में साफ़ सुनाई देने लगी तो विपक्ष ने शोरशराबा मचाना शुरू कर दिया. संसद की कार्यवाही स्थगित करा दी गई. 19 नवंबर से शुरू हुआ संसद का शीतकालीन सत्र बार–बार स्थगित होता रहा और अंत में 23 नवंबर तक के लिए स्थगित कर दिया गया. सरकार को घेरने के लिए विपक्ष को एक अच्छा–ख़ासा मुद्दा मिल चुका था, लेकिन यहां सवाल यह है कि जब जनता उग्र होगी, राजधानी को घेरेगी, क्या तभी विपक्ष को अपनी ज़िम्मेदारी का अहसास होगा? विपक्षी दल एकता परिषद के नेतृत्व में दिल्ली आए हज़ारों भूमिहीन, वंचित और दलित लोगों की शांतिपूर्ण मांग का समर्थन क्यों नहीं करते अथवा उस पर सरकार को क्यों नहीं घेरते?

गन्ना मूल्य को लेकर संसद से सड़क तक विरोध ही विरोध है. मुद्दे में कई पेंच हैं और सवाल भी. आख़िर कृषि मंत्री शरद पवार क्यों चाहते हैं कि पूरे देश में गन्ने की एक ही क़ीमत हो और उसे तय करे केंद्र सरकार? विपक्ष इस मुद्दे को तभी क्यों समझ पाता है, जब किसान सड़क पर उतर आते हैं? बहुत ज़रूरी है इन सवालों के जवाब ढूंढ़ना.

इस मामले में अभी तक विरोध की आवाज़ सिर्फ़ पश्चिमी उत्तर प्रदेश से ही आ रही है. शायद यही वजह है कि इस आंदोलन में चौधरी अजीत सिंह ज़ोर–शोर से कूद पड़े हैं और ऐसा करना उनकी मजबूरी भी है, क्योंकि उनकी राजनीतिक ज़मीन और विरासत पश्चिमी उत्तर प्रदेश ही रहा है. दरअसल, उत्तर प्रदेश के इस हिस्से में राजनीति की दशा और दिशा तय करने में कृषि व ख़ासकर गन्ने की खेती की अहम भूमिका होती है. इसके अलावा गन्ने के बहाने ही सही, पश्चिमी उत्तर प्रदेश से निकल कर राज्य के अन्य इलाक़ों में भी अपनी राजनीतिक ज़मीन तलाशने का एक मौक़ा अजीत सिंह को मिल गया है. इस बहाने उन्हें एक ऐसा मौक़ा भी मिला है, जबकि वह अपने नए–पुराने राजनीतिक रिश्तों को खंगाल सकें. शायद तभी वर्षों बाद किसी राजनीतिक मंच पर एक अजब नज़ारा देखने को मिला. राल–ेद के नेतृत्व में आयोजित इस रैली, जिसे अजीत समर्थक पंचायत का नाम देते हैं, में मुलायम सिंह यादव व अमर सिंह (सपा), अरुण जेटली (भाजपा), डी राजा व ए.वी.वर्धन(सीपीआई), रघुवंश प्रसाद सिंह (राजद), शरद यादव (जदयू) और आचार्य वासुदेव (माकपा) एक साथ नज़र आए. सभी राजनीतिक दलों ने एक सुर में केंद्र सरकार को कोसते हुए किसानों को गन्ने की क़ीमत 250 से 300 रुपये प्रति क्विंटल देने की मांग की, लेकिन कीमत बढ़ाने की मांग के बीच किसानों की कुछ और बुनियादी समस्याएं थीं, जो इन नेताओं के भाषण में कहीं गुम हो गईं. मुजफ्फरनगर से आए ओमकार, राधेश्याम और जीतेंद्र ने चौथी दुनिया को बताया कि उनके लिए गन्ने की ज़्यादा क़ीमत से अहम है बिजली, क्योंकि बिजली के बग़ैर गन्ने की सिंचाई कर पाना उनके वश की बात नहीं है. डीजल इतना महंगा है कि पूछिए मत. हम बैंक से क़र्ज़ लेकर खेती करते हैं तो मुनाफ़ा बिल्कुल कम हो जाता है. शायद अजीत सिंह समेत समूचे विपक्ष को बिजली व डीजल के बढ़ते दामों और क़र्ज़दार हो रहे किसानों से कोई मतलब नहीं है.

उधर भाजपा ने केंद्र सरकार के इस क़दम को ग़रीब विरोधी बताया है. जबकि अजीत सिंह ने चेतावनी देते हुए कहा कि अगर उनकी मांगों को नहीं माना गया तो वह न तो संसद का शीतकालीन सत्र चलने देंगे और न ही दिल्ली. सपा महासचिव अमर सिंह ने शरद पवार पर गन्ना किसानों को लूटने का आरोप लगाया और कहा कि शरद पवार को देश के गन्ना किसानों की कोई चिंता नहीं है. इन आरोपों में कितना दम है, यह तो अमर सिंह ही बता सकते हैं, लेकिन महाराष्ट्र के उन नेताओं के लिए केंद्र सरकार की वर्तमान गन्ना नीति फ़ायदेमंद साबित होगी, जिनकी ख़ुद की या नाते–रिश्तेदारों की चीनी मिलें हैं. निश्चित तौर पर इस बात का अहसास कृषि मंत्री शरद पवार को भी होगा.

feedback@chauthiduniya.com

मौलाना महमूद मदनी

मुसलमानों की नहीं, मदनी को राजनीति की फ़िक्र है

जमायत-ए-उलेमा-ए-हिंद ने देवबंद में सम्मेलन आयोजित करके एक बार फिर अपनी ताक़त का अहसास कराने की कोशिश की. लोग भी बड़ी संख्या में जुटे, लेकिन उनमें वे भी शामिल थे, जिन्हें समाज की बुराइयों और अपने कथित अगुवाकारों की चालाकी से पर्दा उठाने में तनिक गुरेज़ नहीं था. मतलब यह कि वे दिन हवा हुए, जब मुसलमान किसी के इशारे पर नाचा करते थे. आज वे अपना बुरा-भला अच्छी तरह समझते हैं और दूसरों को समझा भी सकते हैं.

योगिंदर सिकंद

उत्तर प्रदेश के सहारनपुर ज़िले का देवबंद क़स्बा. पिछले दिनों जमायत-ए-उलेमा-ए-हिंद के 30वें वार्षिक सम्मेलन में यहां लाखों लोग जुटे थे. सिर्फ़ और सिर्फ़ पुरुष. जमायत-ए-उलेमा-ए-हिंद देवबंदी फिरके के मुस्लिम उलेमाओं का कट्टरपंथी धड़ा है. सूत्रों का दावा है कि इस सम्मेलन में पूरे देश के कोने-कोने से पांच लाख से भी ज़्यादा लोग एकत्र हुए थे. सम्मेलन वाले स्थान पर जाने के संकरे और धूल भरे रास्ते पर भीड़ इतनी थी कि लोग बमुश्किल ही आगे बढ़ पा रहे थे. मीडिया के ज़्यादातर लोगों ने भीड़ से बचने के लिए सभा स्थल से थोड़ी दूरी पर डेरा जमा लिया था. लाउड स्पीकर की वजह से मीलों दूर बैठकर भी सभा की गतिविधियों से वाक़िफ़ हुआ जा सकता था. दारूल उलूम के बारे में कहा जाता है कि यह दुनिया का संभवतः सबसे बड़ा मदरसा है और देवबंदी आंदोलन का मुख्य केंद्र बिंदु भी.

सम्मेलन की शुरुआत आज़ादी की लड़ाई में जमायत के उलेमाओं के योगदान की प्रशंसा के साथ हुई. कहा गया कि हम लोगों ने पाकिस्तान के निर्माण का कड़ा विरोध किया. हमारे लोगों ने देश के लिए क़ुर्बानियां दीं. हम सभी तरह के आतंकवाद की निंदा करते हैं. हम वतनपरस्त हैं और भारत से मुहब्बत करते हैं, भले ही आप मानें या न मानें. मौलाना बोले ही जा रहे थे. मेरे आसपास जो भी लोग बैठे थे, उनकी वेशभूषा भीड़ में शामिल लोगों जैसी ही थी. झक सफ़ेद कुर्ता-पाजामा, चेहरे पर उलझी हुई दाढ़ी और सिर पर गोल जालीदार टोपी. लाउड स्पीकर पर वह मौलवियों की बातों को सुनते और सहमति में अपना सिर हिलाते. शायर मौलवी की तरह ही वह अपनी वतनपरस्ती, पाकिस्तान विरोधी मत और आतंकवाद विरोधी रुझान साबित करने के बोझ तले दबे हुए थे. ऐसे वक़्त में जबकि पूरा विश्व इस्लामोफोबिया से ग्रस्त है, वह अपने मजहबी साथियों के साथ एक अवांछनीय स्थिति साझा करने को मजबूर थे.

सम्मेलन की भाषणबाज़ी से भी ज़्यादा मुझे जो बातें दिलचस्प लगीं, वे उसमें शामिल लोगों की प्रतिक्रियाएं थीं. इनमें दारूल उलूम के छात्र और पूर्व छात्र भी थे. उनमें से भी सबसे ज़्यादा दिलचस्प मुझे सहारनपुर के पास के किसी गांव के खेतिहर युवक अकरम की दलील लगी. बकौल अकरम, सब कुछ जमायत के स्वनाम धन्य प्रमुख मौलाना महमूद मदनी की राजनीतिक शिगूफेबाज़ी है. सारा मजमा बस ताक़त का मुजाहिरा है. वह चाहते हैं कि कांग्रेस पार्टी मुसलमानों पर उनके प्रभाव से अभिभूत हो जाए और कांग्रेसी हुक्मरानों से उनकी गहरी छन जाए.

अकरम का इशारा जमायत के भीतर असंदिग्ध आचरण के बारे में था, ये स्वार्थी मुल्ला कभी एकमत नहीं होंगे. बावजूद इसके कि वे मुसलमानों की आपसी एकता को ध्यान में रख रहे हैं. आपसी खींचतान के अलावा उन्हें किसी भी बात की फ़िक्र नहीं है. अकरम अपनी बात का पूरा विश्लेषण करता है, जमायत कई प्रतिद्वंद्वी धड़ों में बंट गई. एक का नेतृत्व हाल ही में मरहूम मौलाना फुजैल कर रहे थे. जबकि दो धड़ों की कमान मौलाना अरसद मदनी और उनके भांजे मौलाना महमूद मदनी संभाले हुए हैं. मौलाना अरसद मदनी ने हाल ही में एंटी टेररिज्म कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया था और मीडिया ने आयोजन की ख़बरों को पूरी तवज्जो दी.

अकरम अपनी बातें कहना जारी रखता है, मौलाना महमूद मदनी जो अरसद के मुख्य प्रतिद्वंद्वी के तौर पर उभरे हैं, ने इस जलसे का बड़े पैमाने पर आयोजन किया है. अपना दबदबा दिखाने का यह घटिया खेल है. अकरम पूरे दावे के साथ कहते हैं कि महमूद के नेतृत्व वाली जमायत ने इसके लिए भारी पैसे ख़र्च किए हैं. लोगों को लाने के लिए रियायती भाड़े पर ट्रेन, देवबंद में ठहरने की व्यवस्था और मुफ्त की चिकन बिरयानी का इंतज़ाम किया गया. अगर कोई असली देवबंदी है तो वह कभी इन चीज़ों को स्वीकार नहीं करेगा. वह रोषपूर्ण लहज़े में कहते हैं, ये मुल्ला किस तरह मुसलमानों को एकजुट करेंगे और कैसे हमारी आवाज़ बुलंद करेंगे?

दारूल उलूम के क़रीब स्थित किताब की दुकान के मालिक फैसल कहते हैं, इस पूरे मजमे में आप एक भी आधुनिक शिक्षा प्राप्त मुसलमान नहीं तलाश पाएंगे. मौलवी उन्हें दूर ही रखना पसंद करते हैं. ऐसा इसलिए नहीं कि ये उन्हें धार्मिक नहीं मानते, बल्कि इसलिए कि इन्हें यह डर सताता है कि इनकी सत्ता को वे कहीं चुनौती न दे दें. फैसल अपनी दुकान के आसपास मंडरा रही भीड़ की ओर इशारा करते हैं. उनका हुलिया, उनकी वेशभूषा और उनके तौर-तरीक़े सभी इस बात का खुलासा करते हैं कि वे या तो ग़रीब किसान हैं या फिर मस्जिदों और मदरसों के मुल्ले-मौलवी.

फैसल बेबाक टिप्पणी करते हैं, मुल्लों-मौलवियों को आधुनिक दुनिया की जरा भी समझ नहीं है. ऐसे में वे हमें नेतृत्व कैसे प्रदान करेंगे? लेकिन मुस्लिम मध्यम वर्ग अभी भी या तो सामुदायिक मसलों के प्रति उदासीन है या फिर मुल्लों-मौलवियों के ख़िलाफ़ मुंह खोलने से वह डरता है. इस तरह समुदाय पर उनकी पकड़ को अभी भी कहीं से कोई चुनौती नहीं है. यही वजह है कि जमायत-ए-उलेमा-ए-हिंद आसानी से लोगों को इस जलसे में शामिल होने के लिए तैयार कर सकी.

दारूल उलूम का छात्र बिलाल मदरसा रिफॉर्म्स का विरोध करने के लिए जमायत के नेताओं की आलोचना करता है. कॉन्फ्रेंस के आख़िर में पारित उस प्रस्ताव से यह बात ज़ाहिर भी होती है, जिसमें जमायत ने सरकार द्वारा नेशनल मदरसा बोर्ड के गठन के सुझाव की आलोचना की थी. राजनीति से प्रभावित ये मौलवी अपने बच्चों को आधुनिक स्कूलों में पढ़ाते हैं, उन्हें शिक्षा के लिए विदेश भेजते हैं. लेकिन, उन्हें इस बात की जरा भी फ़िक्र नहीं है कि मदरसे के बच्चे, जिनमें ज़्यादातर ग़रीब परिवारों से ताल्लुक रखते हैं, आधुनिक दुनिया के बारे में कुछ जानें. ये हमें मूढ़ बनाकर रखना चाहते हैं, इसलिए हमारे नाम पर राजनीति का खेल खेलते हैं. फैसल मदरसे की दीवार से सटे खुले नाले में बह रहे मैले पानी में तैर रहे प्लास्टिक के बैग और ताज़े मल की ओर इशारा करते हैं. आगे मस्जिद की दीवार से सटे बग़ैर दरवाज़े वाले शौचालय से निकल कर मल गलियों में बह रहा था. वह रसूल का हवाला देते हुए एक कहावत कहते हैं कि साफ़-सफ़ाई तो आधी आस्था है और यहां आप देख रहे हैं कि हमारी आधी आस्था गटर में है.

बिलाल मुझे मदरसे के छात्रावास की ओर लेकर जाते हैं. अंधेरे, गंदे और सीलन भरे कमरे और प्रत्येक कमरे में आधा दर्ज़न से ज़्यादा छात्र. कमरे की सतह पर गंदगी का साम्राज्य नज़र आता है. दारूल उलूम वक्फ के पास तो स्थिति और भी बदतर नज़र आती है. इसकी स्थापना देवबंदी मौलवियों के प्रतिद्वंद्वी समूह ने की है. 1980 में देवबंद मदरसा के उलेमा मौलाना कारी तैयब को बेदख़ल कर मदनी परिवार एक तरह से इस संस्थान पर हावी हो गया. यहां छात्रावास के कमरों के बाहर बिखरे पड़े सब्ज़ियों के छिलकों, बची-खुची दाल और चावल पर मक्खियां भिनभिना रही थीं. लेकिन यहां के मुल्ले-मौलवी, जो ख़ुद को पैगंबर का वारिस बताते नहीं थकते, उन्हें इन बातों की जरा भी फ़िक्र नहीं है. उन्हें फ़िक्र है तो बस सत्ता और शोहरत की. बिलाल अपना रोष प्रकट करते हैं.

अगली सुबह हर अख़बार के पन्ने देवबंद के सम्मेलन की ख़बरों से रंगे दिखाई देते हैं. सम्मेलन में जमायत द्वारा पारित कई प्रस्तावों में से एक यानी वंदे मातरम गाने की अनिवार्यता के विरोध में प्रस्ताव को सभी अख़बारों में पूरी तवज्जो मिली होती है. रिजवान दारूल उलूम से स्नातक हैं और फ़िलहाल आगरा के देवबंदी मदरसा में अध्यापन कर रहे हैं. उनकी राय भी सम्मेलन में भाग लेने वाले आम प्रतिभागियों जैसी है, हम वतनपरस्त हैं, लेकिन यह मांग जायज़ नहीं है कि सभी वंदे मातरम का गायन करें. वतन के प्रति हमारी निष्ठा की परीक्षा का मूल्यांकन इस गाने के प्रति हमारे नज़रिए से करना पूरी तरह हास्यास्पद है. यह गीत मूल रूप से एक पुस्तक में निहित है, जो खुले तौर पर मुसलमानों के प्रति नफ़रत को हवा दे रहा है. आज़ादी के पूर्व के दिनों में भी इसने बड़ी हलचल पैदा की थी. रिजवान इसकी व्याख्या करते हैं, यह सिर्फ़ मुसलमानों को ही अमान्य नहीं है, बल्कि दूसरे एकेश्वरवादियों को भी यह स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि इस गाने में मातृभूमि की देवी के रूप में वंदना की गई है. लेकिन साथ ही वह यह कहने से भी नहीं चूकते कि वर्षों से ठंडे बस्ते में पड़े इस मुद्दे को उठाने की कोई ज़रूरत ही नहीं थी, फिर भी जमायत ने बिना वजह इसे हवा दी. यह मौलाना महमूद और उनके साथियों की विवाद को सुलगा कर उसकी रोशनी में ख़बरों में बने रहने और ख़ुद को मुसलमानों का रहनुमा पेश करने की संभवतः सोची-समझी रणनीति है.

रिजवान मीडिया द्वारा इस सम्मेलन को कवरेज देने के तरीक़े पर भी उतनी ही नाराज़गी प्रकट करते हैं. वह कहते हैं कि मीडिया ने वंदे मातरम मसले को ख़ूब उछाला और सम्मेलन में पारित दूसरे प्रस्तावों जैसे आतंकवाद का जमायत द्वारा विरोध आदि की पूरी तरह से अनदेखी कर दी. सच्चर कमेटी की अनुशंसाओं को लागू करने के लिए प्रस्ताव पारित किए गए, संप्रदायवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ने का ऐलान किया गया और मुसलमानों की सुरक्षा का मसला उठाया गया, लेकिन मीडिया ने इन्हें महत्व ही नहीं दिया.

जमायत द्वारा प्रायोजित इस नाटक के पीछे हमारे स्वनाम धन्य नेताओं की तरह ही मीडिया भी मुसलमानों के कल्याण के प्रति दिलचस्पी नहीं रखती है. जिस विवाद को तूल पकड़ने से रोका जा सकता था, जमायत और मीडिया दोनों उसे हवा देने में लगे रहे. बदक़िस्मत तो आम मुसलमान हैं, जिन्हें लगातार इसका ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ता है और जिनकी आवाज़ अनसुनी कर दी जाती है.

(लेखक नेशनल लॉ स्कूल, बेंगलुरू के सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ सोशल एक्सक्लूजन एंड इन्क्लूसिव पॉलिसी में कार्यरत हैं.)

feedback@chauthiduniya.com

रंगनाथ मिश्रा आयोग

अनुशंसा लागू करने की मांग में लोग सड़कों पर

फोटो- *प्रभात पाण्डेय*

18 नवंबर की ठंडी सुबह, लेकिन राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के जंतर-मंतर पर हज़ारों लोग सुबह से ही इकट्ठा हैं. यह संख्या महज़ हज़ारों की है, लेकिन यह प्रतिनिधि है देश के उन लाखों मुसलमानों और ईसाइयों की, जिनकी हालत किसी भी हिंदू दलित से कमतर नहीं है.

यूं तो जंतर-मंतर पर आए दिन कोई न कोई धरना-प्रदर्शन होता है, लेकिन लोगों की यह भीड़ कुछ ख़ास है और इनकी मांग भी. ऐसा मानने के लिए आप इस ख़बर के साथ छपी तस्वीर पर ग़ौर करें. इसमें एक आदमी धर्म, क़ानून व जाति व्यवस्था की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है. यही बेड़ियां इस आदमी और इसके जैसे लाखों ईसाइयों-मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दुर्दशा के लिए ज़िम्मेदार हैं. दरअसल जंतर-मंतर आए उक्त लोग धार्मिक एवं भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए गठित रंगनाथ मिश्रा आयोग की रिपोर्ट को जल्द से जल्द संसद में पेश करने और उसकी अनुशंसाओं को लागू करने की मांग कर रहे हैं. राष्ट्रीय दलित ईसाई परिषद (एनसीडीसी) और ऑल इंडिया पसमांदा मुस्लिम महाज के नेतृत्व में इन लोगों ने धरना-प्रदर्शन कर सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े मुसलमानों और ईसाइयों को दलित का दर्ज़ा देने की मांग की. एनसीडीसी ने सरकार से संविधान के 1950 के अनुसूचित जाति आदेश, पैरा 3 को हटाए जाने की मांग की, जिसकी वजह से केवल हिंदू, सिख और बौद्ध धर्म से जुड़े लोगों को ही अनुसूचित जाति का दर्ज़ा मिल सकता है. जबकि मिश्रा आयोग ने कहा है कि मुसलमानों और ईसाइयों में भी एक बड़ा तबका ऐसा है, जिसकी हालत किसी भी हिंदू या सिख दलित से कमतर नहीं है.

विभिन्न राजनीतिक दलों ने भी दलित मुसलमानों और ईसाइयों की इस मांग का समर्थन किया है. जदयू सांसद अली अनवर ने धरने में शिरकत करते हुए कहा कि यूपीए सरकार जल्द से जल्द लाखों वंचित मुसलमानों और ईसाइयों के हित में आयोग की अनुशंसाओं को लागू करे, वरना यही लोग अगले चुनाव में यूपीए सरकार को सबक सिखाने के लिए तैयार रहेंगे. धरने में अलग-अलग राज्यों से आए दलित मुसलमानों और ईसाइयों ने अपनी पीड़ा झांकियों, नुक्कड़ नाटक और गीतों के ज़रिए भी बयान की. इसके बाद मुस्लिम और ईसाई संगठनों के नेताओं ने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को एक ज्ञापन सौंप कर उन्हें अपनी मांगों से अवगत कराया.

मालूम हो कि अभी हाल में ही *चौथी दुनिया* ने रंगनाथ मिश्रा आयोग की रिपोर्ट और उसकी अनुशंसाओं को प्रकाशित किया था. इसे सरकार ने गोपनीय मानते हुए अब तक सार्वजनिक नहीं किया है. दरअसल, इस रिपोर्ट में आयोग ने साफ़ तौर पर संविधान से पैरा 3 (अनुसूचित जाति आदेश 1950) को हटाने के साथ ही सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक तौर पर पिछड़े मुसलमानों और ईसाइयों को दलित का दर्ज़ा देने की अनुशंसा की है. आयोग ने इस तबके के विकास के लिए इन्हें शिक्षा और नौकरियों में भी आरक्षण देने की बात कही है. सरकार के लिए यही अनुशंसाएं गले की फांस बन गई हैं. किसी के हिस्से का कोटा काट कर किसी अन्य को देना वर्तमान सरकार के लिए एक कठिन राजनीतिक चुनौती साबित हो सकती है. नतीजतन, पिछले दो सालों से सरकार इस रिपोर्ट को संसद में पेश करने से बच रही है.

शशि शेखर
feedback@chauthiduniya.com

वर्ष 1969 में राष्ट्रीय श्रम आयोग ने आदिवासियों को स्थायी निवास और खेती के अधिकार देने की सिफ़ारिश की थी. राज्य सरकारों को इस संबंध में निर्देश भी दिए गए, पर नतीजा शून्य रहा.

आदिवासियों तक विकास योजनाएं नहीं पहुंच पा रही हैं

लगभग 90 प्रतिशत कोयला खदानें, 72 प्रतिशत जंगल और 80 प्रतिशत खनिज उत्पाद आदिवासियों की ज़मीन की कोख में हैं. आदिवासी बहुल इलाक़ों में 3000 से भी ज़्यादा पनबिजली परियोजनाएं हैं. देश के औद्योगीकरण और शहरीकरण की बुनियादी सुविधाएं इन्हीं इलाक़ों के संसाधनों से जुटाई गई हैं, पर आदिवासियों को क्या मिला? इसलिए आज भी 85 प्रतिशत आदिवासी ग़रीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं.

बिमल राय

देश भर के आदिवासियों को अपराधी बताने वाले क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट को आज़ादी के बाद भले ही ख़त्म कर दिया गया, लेकिन उनके चेहरे पर लगी कालिख के निशान आज तक बरक़रार हैं. आरक्षण व दूसरी सुविधाओं के बावजूद आज भी यह विशाल समुदाय ख़ुद को राष्ट्र की मुख्यधारा से अलग-थलग महसूस करता है. 1991 की जनगणना के मुताबिक़, देश में आदिवासियों की आबादी 6,77,58,390 थी, जो 2001 की जनगणना में बढ़कर 8,43,26,280 हो गई. मतलब यह कि अभी भी हमारे देश की कुल आबादी का लगभग 10 प्रतिशत हिस्सा जनजातियों के रूप में दर्ज़ है.

1999 में प्रकाशित माइनारिटी राइट्स ग्रुप इंटरनेशनल की रिपोर्ट के मुताबिक़, भारत के 90 प्रतिशत आदिवासी खेती पर निर्भर हैं. 2001 की जनगणना से यह भी पता चलता है कि 76 प्रतिशत आदिवासी खेती या भूमिहीन खेत मज़दूर के रूप में कार्य कर रहे हैं. शिकार एवं वन संपदा का संग्रह कर रोजी-रोटी चलाना उनके लिए और कठिन हो गया है. इस तरह वे एक नए तरह के आंतरिक उपनिवेशवाद का शिकार हो गए हैं. अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए बने राष्ट्रीय आयोग ने पाया कि 83 प्रतिशत बंधुआ मज़दूर आदिवासी समुदाय से हैं. वनों के कटने और उनके संरक्षित होने के कारण इनके सामने जीविका के साधन सीमित हो गए हैं और वे वन श्रमिक बनकर जीने के लिए मजबूर हैं, फिर भी उन्हें सरकारी दर पर मज़दूरी नहीं मिलती.

वर्ष 1954 में भारत सरकार ने आदिवासियों के विकास के लिए कुल 43 योजनाएं शुरू कीं. हर योजना के लिए 27 लाख रुपये ख़र्च करने का प्रावधान रखा गया. समय था पांच साल का. पांच साल बीतने पर भी देखा गया कि उक्त योजनाएं लक्ष्य हासिल करने में बुरी तरह विफल रहीं. विफलता की उस कहानी का आज तक अंत नहीं हुआ है. नाकामयाबी इसलिए मिली कि इस प्रक्रिया में आदिवासियों की राय को अहमियत नहीं दी गई. विकास की प्रक्रिया में आख़िरी राय परिकल्पना बनाने वालों की ही चलती रही. एक रोचक मिसाल देखें. कुछ साल पहले विकास के नाम पर मध्य प्रदेश के आदिवासी गांवों में सरकारी पहल पर घर-घर जल्दी खाना बनाने की तकनीक वाले चूल्हे बांटे गए. कुछ दिन बाद देखा गया कि महिलाएं उनका उपयोग नहीं कर रही हैं या फिर उन्हें ठोंक-पीटकर अपने हिसाब से नया आकार दे दिया गया है. एक महिला ने बताया कि बर्तन रखते ही यह चूल्हा बुझ जाता है. इसके अगल-बगल में कोई छेद नहीं है, जिससे हवा अंदर जा सके या धुआं निकल सके.

आदिवासियों के विकास की योजनाओं के रचयिता इस इलाक़े के सामाजिक ताने-बाने व संस्कृति से पूरी तरह अनजान रहते हैं. इसीलिए कहा जाता रहा है कि योजना बनाने की प्रक्रिया में आदिवासियों को शामिल किया जाए. उड़ीसा के कालाहांडी की बात सब जानते हैं, पर देश के आदिवासी इलाक़ों में कई टुकड़ों में बंटे कालाहांडी की तरफ़ सबकी नज़र कहां जाती है? भूख से मौतें दूसरी जगहों पर भी होती रही है, लेकिन बंगाल का एक उदाहरण लें, पश्चिम बंगाल और झारखंड की सीमा पर बसे आमलासोल गांव 2004 के जून महीने में अचानक सुर्ख़ियों में आया, क्योंकि वहां शिकार पर निर्भर रहने वाली शबर जनजाति के पांच लोगों की मौत भूख से हो गई थी. उस समय काफ़ी हो-हल्ला मचा, पर कुछ समय बाद दूसरे मुद्दों की तरह इसे भी जनता व मीडिया ने भुला दिया.

आज जब हम आदिवासियों की बदहाली और नक्सल समस्या के मूल कारणों की चर्चा कर रहे हैं तो आमलासोल को ज़रूर याद करना होगा. लालगढ़ में ख़ून बहा रहे माओवादियों के सफ़ाए की जंग लड़ रही बंगाल सरकार ने 33 वर्षों में कितना विकास किया है, आप इलाक़े में आकर देख सकते हैं. आमलासोल के सबसे क़रीब का पक्का रास्ता 17 किलोमीटर दूर है. वहां जाने के कच्चे रास्ते पर सिर्फ़ साइकिल ही चल सकती है. पूरे गांव में शिकारी जाति के लोग रहते हैं. इनकी अपनी कोई ज़मीन-जायदाद नहीं है. रोज़गार के नाम पर सिर्फ़ जंगल से लकड़ी चुनने और तेंदूपत्ता संग्रह करने का काम है. इसमें भी सरकारी नीतियां बाधा बनकर खड़ी हैं. यहां नियम है कि आदिवासी स्वयं सहायता समूह के ज़रिए तेंदूपत्ता आदिवासी विकास निगम को ही बेचेंगे. लेकिन स्वयं सहायता समूह इस काम के लिए पूंजी कहां से लाएंगे, यह बताने वाला कोई नहीं है. नतीजा यह हुआ कि स्वयं सहायता समूह केवल काग़ज़ों पर ही सक्रिय रहा. इसके पहले आदिवासी महाजनों को तेंदूपत्ता बेचते थे, किंतु जबसे सरकारी नियम हो गया कि महाजनों को तेंदूपत्ता नहीं बेचना है, तबसे आदिवासियों के सामने संकट पैदा हो गया. लिहाजा तेंदूपत्ते की ख़रीद-बिक्री बंद हो गई. इस तरह आदिवासी और दरिद्र होते चले गए.

1969 में राष्ट्रीय श्रम आयोग ने आदिवासियों को स्थायी निवास और खेती के अधिकार देने की सिफ़ारिश की. राज्य सरकारों को इस संबंध में निर्देश भी दिए गए, पर नतीजा शून्य रहा. विकास की बयार से देश समृद्ध होता गया, पर उसी रफ़्तार से आदिवासी ग़रीब होते गए. विकास योजनाओं से 1,85,000,00 यानी पूरी आबादी का दो फ़ीसदी से ज़्यादा हिस्सा विस्थापित हुआ है, जिनमें से 50 फ़ीसदी आदिवासी हैं. ग़ौरतलब है कि भारत की आबादी का लगभग 10 प्रतिशत हिस्सा आदिवासी हैं. इतनी बड़ी संख्या में विस्थापन के बावजूद भारत सरकार के पास एक ऐसी नीति नहीं है, जो सारे राज्यों में समान रूप से लागू होती हो. आदिवासी परिवारों की अर्थव्यवस्था में अगर महिलाओं का योगदान नहीं होता तो इनकी हालत और भी बदतर हो जाती. शारीरिक श्रम के बूते उपार्जन करने वाले श्रमिकों के चार्ट से यह बात साफ़ हो जाती है.

आदिवासियों का हक़ छीनने के उदाहरण अनगिनत हैं, पर आप एक मिसाल केरल के एक आदिवासी गांव की देखिए, जिसके बारे में तहलका के 27 सितंबर 2008 अंक में छपा था. वर्ष 1987 में केरल के ट्रॉपिकल बोटानिक गार्डन एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट यानी टीबीजीआरआई के कुछ वैज्ञानिकों को कुट्टिमाथान कानी और उनके मित्र मल्लन कानी ने जब आरोग्यपाचा वृक्ष के बारे में बताया था तो वे भी यह अंदाज़ा नहीं लगा पाए कि यह इतना गुणकारी होगा. आदिवासियों के बीच यह वृक्ष यौवनवर्द्धक बूटी के रूप में बहुत पहले से प्रचलित था. पश्चिम भारत की पर्वतमालाओं के घने जंगलों के बीच निवास है इन कानी आदिवासियों का और वहीं उगता है आरोग्यपाचा. इसका वैज्ञानिक नाम *ट्राइकोपस जिलेनिकस* है. टीबीजीआरआई ने तरह-तरह के वैज्ञानिक परीक्षणों के बाद इस वृक्ष से जीवनी नामक एक दवा बनाई, जिसे ख़ूब व्यवसायिक सफलता मिली. आज इस दवा की 15 ग्राम की शीशी की क़ीमत 180 रुपये है. इस वृक्ष में शरीर के लीवर की सुरक्षा करने और प्रतिरोधक क्षमता व कामोत्तेजना बढ़ाने जैसे गुण शामिल हैं. नवंबर 1995 में आर्य वैद्य फार्मेसी (कोयंबटूर) ने टीबीजीआरआई को जीवनी के फ़ार्मूले के लिए 10 लाख रुपये का भुगतान करके सात साल का लाइसेंस हासिल किया था. इन पैसों और दवा बिक्री के लाभांश का दो प्रतिशत हिस्सा टीबीजीआरआई और कानी आदिवासियों के बीच वितरित करने का समझौता हुआ और इसके लिए एक ट्रस्ट भी बना. फार्मेसी के साथ एक समझौता हुआ कि वह केवल कानी आदिवासियों से ही यह भेषज पौधा ख़रीदेगी. लेकिन पेटेंट की समय-सीमा बीतने के साथ ही आर्य वैद्य फार्मेसी के साथ-साथ 11 अन्य कंपनियों ने भी यह दवा बनानी शुरू कर दी. इस पौधे की ओर राष्ट्र संघ और विश्व स्वास्थ्य संगठन का भी ध्यान गया. वर्ष 2002 में कुट्टिमाथान कानी को इक्वेटर इनिसिएटिव पुरस्कार मिला. टाइम पत्रिका के कवर पर उसे जगह मिली, पर इससे उसका और उसके समुदाय को क्या लाभ हुआ? क्या उसके दिन फिरे? नहीं. उनके हितों की देखभाल करने वाला ट्रस्ट भी अब निष्क्रिय हो गया है. कानी ने एक वैन ख़रीदने के लिए ट्रस्ट के बैंक से पांच लाख रुपये का क़र्ज़ लिया, लेकिन कानी को जो पांच लाख रुपये मिले, उन्हें बैंक में अमानत के तौर पर रख दिया गया. उसी रुपये के मासिक ब्याज से उसका काम चलता था. किंतु बैंक अब उसी रुपये से बकाया क़र्ज़ चुकाने के लिए दबाव डाल रहा है. कानी के साथ टीबीजीआरआई का जो समझौता हुआ था, उसके बारे में भी उसे कुछ नहीं पता. इक्वेटर इनिसिएटिव पुरस्कार के सह विजेता एवं टीबीजीआरआई के पूर्व अधिकारी विक्टर पुप्पांगथान कुट्टीमाथान की दर्दनाक ज़िंदगी के लिए उसकी नशे की आदत को ज़िम्मेदार ठहराते हैं. लेकिन, समाजशास्त्री कहते हैं कि समाज के हाशिए पर लुंजपुंज पड़े और ग़रीबी के तीखे दांतों की चुभन झेल रहे आदिवासियों की पीड़ा को हरती है हंडिया. यही वजह है कि शराब उनकी खाद्य संस्कृति में शामिल हो चुकी है और बुद्धिजीवियों को उनके पिछड़ेपन के लिए ज़िम्मेदार ठहराने का एक बहाना. विक्टर का यह भी कहना था कि आरोग्यपाचा से तरह-तरह की सुविधा पाने के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है आदिवासियों की अशिक्षा. काफ़ी हद तक सही है यह बात. कुट्टीमाथान की चार पुत्रियों में से दो और पत्नी यानी परिवार के तीन सदस्य बीमार हैं. उन्हें तत्काल चिकित्सा की ज़रूरत है, किंतु इलाज के लिए उनके पास पैसे नहीं हैं. सरकार की ओर से मिल रही नि:शुल्क खाद्य सामग्री के बूते वे लोग मौत से जूझ रहे हैं, किंतु ऐसा नहीं होना चाहिए. जिस शख़्स ने पूरी दुनिया को आरोग्यपाचा वृक्ष का उपहार दिया, उसे कुछ बेहतर स्थिति में होना चाहिए.

विक्टर बाबू ने ठीक कहा था, अशिक्षा. बीच बहस में एक सवाल ज़िंदा है कि शिक्षा और स्वास्थ्य का नंबर भोजन के बाद है. फिर शिक्षा का सपना तो वे चाहकर भी नहीं देख सकते. पश्चिम मेदिनीपुर के आमलासोल गांव के आदिवासी बच्चे अगर एसपी, डीएसपी या बड़ा बाबू बनने का सपना नहीं देखते तो इसमें अजूबा क्या है? यहां सिर्फ़ एक प्राइमरी स्कूल है, जिससे केवल निरक्षरता का कलंक मिटाया जा सकता है. गांव को हाईस्कूल, पोस्ट ऑफिस और स्वास्थ्य केंद्र आदि में से कुछ भी हासिल नहीं हुआ है. प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र 22 किलोमीटर दूर है और निकटतम हाईस्कूल तक बच्चे शायद शाम तक ही पहुंच पाएं. फिर जब अमन नहीं होगा तो शिक्षा की ज्योति जलेगी कैसे? कोई क्यों नहीं पूछता कि लालगढ़, रामगढ़ और उन जैसे दूसरे दर्ज़नों गांवों- क़स्बों के स्कूलों में पढ़ाई क्यों नहीं हो रही है? क्यों सुरक्षाबल महीनों से वहां क़ब्ज़ा जमाए बैठे हैं और जंगल जंग का मैदान बन गए हैं?

माइनॉरिटी राइट्स ग्रुप इंटरनेशनल की 1999 में प्रकाशित रिपोर्ट में भी भारत के आदिवासियों की हालत सुधारने की कई सिफ़ारिशें की गई थीं. मानवाधिकारों को अंतरराष्ट्रीय मानकों के स्तर पर लाने, सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम को ख़त्म करने और आदिवासियों को वन भूमि पर अधिकार एवं सही मायनों में स्वायत्तता देने जैसी सिफ़ारिशें कई अन्य संगठनों-आयोगों ने भी की, पर हालात जस के तस हैं. तो क्या अब यह समाज अपने बीच से बिरसा मुंडा पैदा नहीं कर सकता? क्या आदिवासियों की क़िस्मत खूंखार माओवादी तय करेंगे या फिर मधु कोड़ा और शिबू सोरेन जैसे लोग?

बिहार की छाती भेदकर आदिवासियों के सपने पूरे करने के लिए बने झारखंड का हश्र हम देख रहे हैं और देख रहे हैं 33 सालों से सर्वहारा वर्ग का हित कर रही बंगाल सरकार के कारनामों को भी. इन दोनों राज्यों के नक़्शे आज उन उत्तर पुस्तिकाओं की तरह पड़े हैं, जिन पर देश के आकाओं को लिखने हैं बहुत सारे ज्वलंत सवालों के जवाब.

feedback@chauthiduniya.com

आदिवासी श्रम शक्ति के योगदान का प्रतिशत (वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार)

राज्य	आदिवासी महिला	ग़ैर-आदिवासी महिला	आदिवासी पुरुष	ग़ैर-आदिवासी पुरुष	आदिवासी प्रतिशत
मध्यप्रदेश	81.26	34.89	56.45	52.38	25.79
छत्तीसगढ़	39.92	28.27	59.98	56.27	37.63
झारखंड	81.26	34.89	56.45	52.38	25.79
उड़ीसा	23.34	18.87	59.67	52.24	28.61
पूरा भारत	32.79	24.22	56.76	51.43	

विकास योजनाओं से विस्थापित हुए आदिवासी(1951-90)

कारण	विस्थापितों की संख्या
बांध	53,000,00
खान	14,000,00
उद्योग	2,400,00
अभयारण्य व नेशनल पार्क	5,000,00
अन्य	1,50,000
कुल	75,90,000

सोत : सोशल एक्शन पत्रिका के जुलाई-सितंबर 1991 अंक में प्रकाशित लेख-पावर एंड पावरलेसनेश-डब्ल्यू फर्नांडीस

विस्थापन के बाद नौकरी पाने वाले लोग

कंपनी	विस्थापितों की संख्या	जिन्हें नौकरियां मिलीं
भारत कुकिंग कोल लि.	3841	752
सेंट्रल कोल फिल्ड्स लि.	7928	3984
ईस्टर्न कोल फिल्ड्स लि.	14750	9751
कुल	26519	14487

सोत : आंकड़ों का अनुमान-डेवलपमेंट, डिसप्लेसमेंट एंड रिहैबिलिटेशन-फर्नांडीस/ठुकराल नामक 1989 में प्रकाशित पुस्तक से. उक्त सरकारी कंपनियां झारखंड और पश्चिम बंगाल में हैं.

देश की पुलिस व्यवस्था में सुधार के लिए कई बार और कई स्तरों पर प्रयास किए जा चुके हैं, लेकिन आपसी मतभेदों के चलते अभी तक सफलता हाथ नहीं लग सकी है.

कई कोशिशों के बावजूद पुलिस सुधार का अभी इंतज़ार है

फोटो– *प्रभात पाण्डेय*

वर्ष 1977 में धर्मवीर की अगुवाई में एक सरकारी संगठन राष्ट्रीय पुलिस आयोग (एनपीसी) का गठन किया गया, जिसका काम भारत में पुलिस व्यवस्था की कार्य प्रणालियों की समीक्षा करना था. साथ ही इस आयोग ने नागरिकों के प्रति पुलिस व्यवस्था को जवाबदेह बनाने के लिए भी कई सुझाव दिए. एनपीसी ने पुलिस सुधार के मामले में आठ विस्तृत रिपोर्ट पेश कीं और पुलिस कल्याण, प्रशिक्षण एवं सार्वजनिक संबंधों के मामले में भी कई सिफ़ारिशें कीं.

हालांकि जब 1981 में पूर्ववर्ती सरकार सत्ता में लौटी तो उसने राष्ट्रीय पुलिस आयोग को भंग कर दिया और एनपीसी की सभी रिपोर्टों को भी ख़ारिज कर दिया. इन रिपोर्टों की सिफ़ारिशें धूल फांकने लगीं और यह अफ़वाह फैली कि एनपीसी की सभी रिपोर्टों को सार्वजनिक लाइब्रेरी से हटा दिया गया. सिर्फ़ आयोग के कुछ अधिकारियों के पास ही इन रिपोर्टों की महज़ चंद प्रतियां थीं. अगले बीस सालों तक यह रिपोर्ट धूल फांकती रही, पुलिस ग़ैर ज़िम्मेदारी से अपना काम करती रही और आम आदमी भी इसके प्रति अनभिज्ञबना रहा.

1990 के मध्य में जब राजनीतिक समीकरण बदला तो उम्मीद की एक किरण नज़र आई और कुछ उत्साही लोग इन सुधारों की कोशिशों के लिए एक मंच पर आए. 1996 में एन के सिंह एवं प्रकाश सिंह पुलिस महानिदेशक के पद से सेवानिवृत हुए और दोनों इसी उद्देश्य के लिए ग़ैर सरकारी संगठन के ज़रिए एक मंच पर आए. इनके साथ कुछ अन्य लोगों ने उच्चतम न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की, जिसमें एक नए पुलिस अधिनियम की ज़रूरत की बात कही गई. उन्होंने यह भी मांग की कि मौजूदा पुलिस व्यवस्था में आंतरिक जवाबदेही की प्रक्रिया कमज़ोर है और राष्ट्रीय पुलिस आयोग द्वारा दिए गए सुझाव इस दिशा में कारगर साबित हो सकते हैं. उनकी यह भी मांग थी कि पुलिस पर बाह्य नियंत्रण नहीं होना चाहिए और इसके बेहतरीन अधिकारियों को व्यवस्था में शीर्ष पदों पर होना चाहिए. यह इशारा देश भर में शीर्ष पदों पर राजनीति से प्रभावित नियुक्तियों की ओर किया गया है. उन्होंने यह भी बताया कि किस तरह पुलिस द्वारा किए जा रहे उत्पीड़न से पुलिस के प्रति आम लोगों का विश्वास घटा है.

स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली बार वर्ष 2005 में यूपीए सरकार के प्रधानमंत्री ने पुलिस सुधार के महत्व और सुझाई गई सिफ़ारिशों पर प्रकाश डाला. इंद्रजीत गुप्ता एक केंद्रीय मंत्री के रूप में दूसरे ऐसे राजनेता थे, जिन्होंने सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों को इस संदर्भ में पत्र लिखा.

इसी दौरान 1997 में जब सरकार बदली तो पहली बार गृहमंत्री ने पुलिस सुधार से संबंधित मामलों पर पहल की शुरुआत की. गृहमंत्री इंद्रजीत गुप्ता राष्ट्रीय पुलिस आयोग की सिफ़ारिशों से भलीभांति वाक़िफ़ थे. उन्होंने 23 राज्यों के मुख्यमंत्रियों को एक चिट्ठी लिखी, जिसमें उन्होंने कहा कि पुलिस व्यवस्था में हद से ज़्यादा राजनीतिक प्रभाव है. पुलिस की कार्य प्रणालियों में जवाबदेही का ज़िक्र तक नहीं है और न ही जनता की समस्याओं को बेहतर ढंग से हल करने की कोई प्रणाली है.

कई वर्षों तक चर्चा के बाद यह पाया गया कि इन मुद्दों पर गृह मंत्रालय के भीतर एवं बाहर ही मतभेद हैं. ऐसा माना गया कि पुलिस स्वयं इन सुधारों को लागू करने की कोशिशों के प्रति अनिच्छुक थी. हालांकि इंद्रजीत गुप्ता द्वारा उठाए गए क़दमों का किसी भी राज्य सरकार ने कोई जवाब नहीं दिया. विभिन्न स्तरों पर लोगों के निहित स्वार्थ भी पुलिस सुधारों को लागू करने के रास्ते में रोड़ा बन रहे थे. इस दौरान राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और एनजीओ कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव ने पुलिस सुधार के मुद्दे को उठाया और प्रकाश सिंह एवं एन के सिंह के साथ न्यायालय में मुक़दमा दर्ज़ कराया. पहली बार कुछ लोगों और सीएचआरआई ने देश भर में छोटे एवं बड़े स्तर पर कार्यशालाएं आयोजित कर जनता को यह बताया कि पुलिस सुधार आख़िर है क्या? राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने क्या सिफ़ारिशें की थीं और दूसरे देशों में इस संदर्भ में कौन–कौन से क़दम उठाए गए हैं? पहली प्रतिक्रिया पुलिस और लोगों से जो मिली, वह उत्साहवर्द्धक थी. लोगों ने पुलिस व्यवस्था के प्रति अपना असंतोष ज़ाहिर किया. कई वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों ने भी इन कार्यशालाओं में हिस्सा लिया और अपनी राय ज़ाहिर की. साथ ही इन अधिकारियों ने सुधार को लागू करने में आने वाली समस्याओं का भी ज़िक्र किया.

संगठन ने मीडिया को भी जागरूक करने का प्रयास किया है, ताकि वह अपराध पर रिपोर्टिंग के ज़रिए पुलिस की लापरवाही को फोकस कर सके और इस तरह पुलिस सुधार का मुद्दा व्यापक तौर पर सामने आ सके. इस अभियान के तहत धीरे–धीरे माहौल बनाया और कहा गया कि पुलिस सुधार की अहमियत को नकारा नहीं जा सकता है. यह इतना ज़रूरी है कि इसके लिए ज़रा सी भी प्रतीक्षा से बहुत देर हो जाएगी.

स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली बार 2005 में यूपीए सरकार के प्रधानमंत्री ने पुलिस सुधार के महत्व और सुझाई गई सिफ़ारिशों पर प्रकाश डाला. इंद्रजीत गुप्ता एक केंद्रीय मंत्री के रूप में दूसरे ऐसे राजनेता थे, जिन्होंने सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों को इस संदर्भ में पत्र लिखा. साथ ही उन्हें संकीर्ण राजनीति से ऊपर उठने एवं एनपीसी की सिफ़ारिशों को लागू करने के लिए प्रेरित करने का प्रयास किया. हालांकि उनका यह प्रयास सफल नहीं हो पाया. आयोग ने कई अहम सुझाव दिए, लेकिन इस देश में इन सुझावों में एक भी परवान नहीं चढ़ पाया. उच्चतम न्यायालय के आदेश पर एवं राष्ट्रीय पुलिस आयोग की सिफ़ारिशों के 20 साल बाद पुलिस सुधारों पर फिर से विचार करने के लिए एक समिति गठित की गई. इस समिति में कई दिग्गज शामिल थे. जैसे मध्य प्रदेश सरकार की सेवानिवृत मुख्य सचिव श्रीमती निर्मला बुच और प्रख्यात पुलिस अधिकारी जे एफ रिबेरियो. श्रीमती बुच ने समिति की एक बैठक के बाद इस्तीफ़ा दे दिया और रिबेरियों को समिति का अध्यक्ष बनाया गया, जिन्होंने 1998 एवं 1999 में दो रिपोर्टें पेश कीं. इसके तुरंत बाद एक दूसरी समिति गठित की गई, जिसके द्वारा कई साहसिक सिफ़ारिशें भी की गईं. गृह मंत्रालय के तहत एक नोडल सेल स्थापित किया गया, जिसमें वोहरा समिति ने आपराधिक गिरोहों, राजनेताओं, सरकारी तंत्र और अन्य विभागों के बीच साठगांठ से निपटने की सिफ़ारिश की.

आगे चलकर वर्ष 2000 में पद्मनाभैया (आईएएस और केंद्रीय गृह सचिव) की अगुवाई में गृहमंत्री ने पुलिस सुधार की समीक्षा के लिए एक समिति गठित की. इस समिति ने 240 सिफ़ारिशें कीं, जिसमें बहाली, पदोन्नति, सामुदायिक पुलिस, कार्यकाल सुनिश्चित करना और भ्रष्ट अधिकारियों को हटाने के लिए आचार संहिता पर ज़ोर दिया गया. कमल कुमार (राष्ट्रीय पुलिस अकादमी के निदेशक एवं आईएएस अधिकारी) की अगुवाई में भी 2004 में एक समीक्षा समिति गठित की गई. इस समिति ने सिफ़ारिश की कि 1980 से सुझाई गई 49 सिफ़ारिशों को अमल में लाने की आवश्यकता थी. इसी तरह कई और समितियां भी गठित की गईं. मसलन, मार्च 2003 में न्यायाधीश मालीमथ समिति, धीरेंद्र सिंह समिति आदि. इन सभी ने प्रगतिशील और प्रतिगामी दोनों तरह की सिफ़ारिशें कीं.

एक बार फिर वर्ष 2005 में संसदीय सलाहकार समिति ने पुलिस सुधार (2005) पर सिफ़ारिश की कि कांस्टेबलों को और अधिक अधिकार दिए जाने चाहिए. उन्हें अत्याधुनिक हथियारों से लैस होना चाहिए. उदाहरण के तौर पर .303 राइफल की जगह आधुनिक राइफल के इस्तेमाल पर ज़ोर दिया जाना चाहिए. अन्य सभी सुझावों के बीच यह भी सिफ़ारिश की गई कि पदोन्नति के बेहतर अवसरों के साथ–साथ कांस्टेबलों और सहायक सब इंस्पेक्टरों की सीधी भर्ती की जानी चाहिए. समिति की दूसरी सिफ़ारिश थी, 1861 के पुलिस अधिनियम की जगह नए अधिनियम को लाना. दरअसल, सभी समितियों एवं आयोगों ने पुराने क़ानून को बदलने और उसकी जगह लोकतांत्रिक समकालीन क़ानून को लागू करने की सलाह दी है. इन तमाम सिफ़ारिशों को लागू करने में लापरवाही इस बात की ओर इशारा करती है कि कई स्तरों पर इन सुधारों को लेकर मतभेद है और यह मतभेद आम आदमी की समझ से बिल्कुल परे है.

डोयल मुखर्जी
feedback@chauthiduniya.com

(लेखिका अंतरराष्ट्रीय मामलों की विशेषज्ञ हैं)

हालांकि यह एक जोख़िम भरा क़दम था, लेकिन किसानों को अपने प्रयोग और मेहनत पर भरोसा था. उनका श्रम व्यर्थ नहीं गया और दूसरे लोगों के लिए भी एक नया रास्ता खुल गया.

सरसों के फूलों से शहद का उत्पादन

भरतपुर के किसानों ने सरसों की खेती के साथ ही शहद उत्पादन के रूप में एक साहसिक क़दम उठाया है. बस उन्हें सरकारी संरक्षण-प्रोत्साहन की ज़रूरत है. अगर ऐसा हो जाए तो वे इस क्षेत्र में शानदार प्रदर्शन कर सकते हैं.

उमाशंकर मिश्र

राजस्थान के क़रीब दर्ज़न भर ज़िलों को सरसों की खेती के लिए जाना जाता है. पूर्वी राजस्थान का भरतपुर ज़िला भी उन्हीं में से एक है, जहां नवंबर–दिसंबर के महीने में रेतीली धरती सरसों के पीले फूलों से ढक जाती है. स्थानीय किसानों ने सरसों के खेतों में शहद उत्पादन की तरक़ीब खोज निकाली है. यह क़दम सरसों के तेल के साथ–साथ भरतपुर की अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग बन रहा है.

यदि इस वर्ष सर्दियों में मौसमी परिस्थितियां अनुकूल रहें और सरकार द्वारा शहद का समर्थन मूल्य घोषित कर दिया जाए तो भरतपुर देश का सबसे अधिक शहद उत्पादन करने वाला ज़िला बन जाएगा. अब तक भरतपुर को सिर्फ़ केवलादेव राष्ट्रीय पक्षी उद्यान के लिए जाना जाता था, लेकिन अब इसकी पहचान शहद उत्पादक ज़िले के रूप में भी होने लगी है. उल्लेखनीय है कि गत वर्ष भरतपुर में 1200 मीट्रिक टन शहद का रिकॉर्ड उत्पादन हुआ. भरतपुर में मधुमक्खी पालन व्यवसाय के फलने–फूलने का मुख्य कारण क़रीब एक लाख 70 हज़ार हेक्टेयर क्षेत्रफल में बोई जाने वाली सरसों की फ़सल एवं मौसमी परिस्थितियां हैं. मधुमक्खियों को मध्य अक्टूबर से जनवरी माह के अंत तक सरसों की फ़सल से मकरंद एवं पराग प्रचुर मात्रा में मिलता है. इन दिनों तापमान भी 20 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक न होने के कारण मधुमक्खियां अपना काम अधिक गति से करती हैं, जिससे उनके छत्ते एक सप्ताह में शहद से भरने लगते हैं. सरसों की फ़सल से प्राप्त मकरंद और पराग के ज़रिए मधुमक्खियों द्वारा उत्पादित शहद घी की तरह जमा हुआ रहता है, इसलिए उसकी विदेशों में बहुत मांग रहती है, क्योंकि वहां ब्रेड पर मक्खन के स्थान पर शहद लगाकर खाने का प्रचलन बढ़ा है. इस व्यवसाय को गति देने में सबसे महत्वपूर्ण कारक यह भी रहा कि शहद के विपणन के लिए मधुमक्खी पालकों को कहीं भी नहीं जाना पड़ता, बल्कि निर्यातक ख़ुद मधुमक्खी पालकों से शहद ख़रीद कर ले जाते हैं. यहां उल्लेखनीय है कि जिस फ़सल अथवा वृक्षों के फूलों से मधुमक्खियां मकरकंद एकत्रित करके लाती हैं, शहद का रंग, ख़ुशबू एवं क़िस्म भी उसी के अनुरूप बन जाती है, जिसकी वजह से अलग–अलग फ़सलों के शहद की क़ीमत भी अलग–अलग रहती है.

इस व्यवसाय को एक और कारक आगे बढ़ाने में उपयोगी सिद्ध हुआ है कि जिस फ़सल के पास मधुमक्खियों के डिब्बों को रखा जाता है, उसके उत्पादन में क़रीब 20 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है, क्योंकि मधुमक्खियां मकरंद एकत्रित करते समय फ़सलों के फूलों से पराग कण अपने पंखों व पैरों के साथ चिपका कर एक फूल से दूसरे फूल तक ले जाने में सहायक होती हैं, जिससे पर–परागण में वृद्धि होने से फ़सलों का उत्पादन बढ़ जाता है. मधुमक्खियों में मज़दूर मधुमक्खियां आसपास के दो किलोमीटर वर्ग क्षेत्रफल में घूम–फिरकर मकरंद एकत्रित करती है.

मधुमक्खी पालन के लिए इटालियन (एपीसमेलीफेरा) नामक मधुमक्खी उपयुक्त सिद्ध हुई है, जो इस क्षेत्र की आदर्श मौसमी परिस्थितियों में बेहतर ढंग से कार्य कर अधिक शहद का उत्पादन करती है. मधुमक्खी पालन के व्यवसाय में शहद के अलावा रायल जैली, पराग कण, मौनी विष, मौनी गोंद एवं मोम का उत्पादन भी होता है, किंतु आवश्यक संसाधन व तकनीकी सुविधाएं उपलब्ध न होने के कारण अभी तक शहद के अलावा अन्य पदार्थों का लाभ हासिल नहीं हो पाया है. जबकि उनका विक्रय मूल्य शहद से कई गुना अधिक है. इस व्यवसाय में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि फूलों की उपलब्धता एवं बढ़ते तापमान पर नियंत्रण के लिए मधुमक्खियों को उत्तराखंड अथवा तराई क्षेत्रों में ले जाना पड़ता है, क्योंकि वे 20 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर आसानी से कार्य करती हैं. यदि तापमान अधिक होता है तो उनकी मृत्यु दर तेज़ी से बढ़ सकती है. सरसों की फ़सल समाप्त हो जाने से फूलों की उपलब्धता भी ख़त्म हो जाती है, तब मधुमक्खियों को पहाड़ों पर ले जाना पड़ता है, जहां उन्हें अनेक जंगली वनस्पतियों के फूल मिल जाते हैं.

मधुमक्खी पालन के 50 डिब्बों की एक आदर्श यूनिट के लिए क़रीब एक लाख 50 हज़ार रुपये व्यय करने पड़ते हैं. एक वर्ष में ही इन डिब्बों से 2,500 किलोग्राम शहद मिल जाता है. साथ ही डिब्बों की संख्या दोगुनी हो जाती है, जिससे एक ही वर्ष में मधुमक्खी पालक की लागत वसूल हो जाती है और अगले वर्ष से उसे औसतन 2 लाख रुपये सालाना का मुनाफ़ा मिलना शुरू हो जाता है.

आगामी सर्दियों के मौसम में यदि कोहरे की स्थिति पैदा न हुई और केंद्र सरकार ने शहद का समर्थन मूल्य घोषित करने के साथ ही राष्ट्रीय मधुमक्खी पालन बोर्ड को क्रियाशील बना दिया तो शहद उत्पादन में किसानों की रुचि बढ़ेगी और इससे काफी मुनाफ़ा कमाया जा सकेगा. जानकारों का मानना है कि यदि शहद का समर्थन मूल्य 10 हज़ार रुपये प्रति क्विंटल भी घोषित कर दिया गया तो यह व्यवसाय इतनी तेज़ी से बढ़ेगा कि राजस्थान के सरसों उत्पादक ज़िलों में क़रीब 50–75 हज़ार युवकों को अतिरिक्त रोज़गार के अवसर मिल सकेंगे. यही नहीं, यदि सरकार अपेक्षित संसाधन उपलब्ध करा दे तो पैदावार भी 15 से 20 प्रतिशत बढ़ने की संभावना है.

उल्लेखनीय है कि मधुमक्खी पालन का व्यवसाय भरतपुर ज़िले में लुपिन ह्यूमन वेलफेयर एंड रिसर्च फाउंडेशन द्वारा क़रीब छह वर्ष पहले शुरू कराया गया था. धीरे–धीरे यह धौलपुर, अलवर, करौली एवं सवाई माधोपुर आदि ज़िलों में फैल गया. फिर तो मधुमक्खी पालन इन इलाक़ों में इतना लोकप्रिय हुआ कि इससे क़रीब तीन हज़ार युवक सहज ही किसी न किसी रूप में जुड़ गए. मधुमक्खी पालन व्यवसाय के लिए खादी ग्रामोद्योग बोर्ड से मदद दिलाने की पहल लुपिन संस्था ने की और उसने उत्पादकों द्वारा लिए गए क़र्ज़ पर क़रीब 30 प्रतिशत का अनुदान भी उपलब्ध कराया. इसके बावजूद शहद का समर्थन मूल्य घोषित न होने के कारण उत्पादकों को अक़्सर घाटे की मार सहनी पड़ जाती है. यही नहीं, बाज़ार के उतार–चढ़ाव के चलते दामों में आई गिरावट से किसानों के हौसले कभी–कभी पस्त होने लगते हैं. ऐसे में यह व्यवसाय फलता–फूलता रहे, इसके लिए किसानों को प्रोत्साहित करने की ज़रूरत है. शहद प्रसंस्करण यूनिट के चालू होने के बाद इस व्यवसाय में और इज़ाफ़ा होने की बात कही जा रही है. माना जा रहा है कि मधुमक्खी पालक शहद निर्यातकों को औने–पौने दामों में शहद बेचने के स्थान पर अब प्रसंस्करण के बाद उचित मूल्य पर उसका विक्रय कर सकेंगे. लुपिन के अधिशाषी निदेशक सीताराम गुप्ता का कहना है कि यदि राजस्थान के सरसों उत्पादक क़रीब 11 ज़िलों में यह कार्यक्रम शुरू कराया जाए तो प्रतिवर्ष लगभग 50 हज़ार युवाओं को अतिरिक्त रोज़गार मिल सकेगा. यदि राज्य सरकार मिड डे मील योजना में 10 ग्राम शहद भी उपलब्ध कराना शुरू कर दे तो इससे बच्चों को उपयोगी खनिज पदार्थ व विटामिन प्राप्त होंगे, जिससे उनका स्वास्थ्य अधिक बेहतर हो सकेगा. साथ ही राज्य के मधुमक्खी पालकों को शहद के लिए स्थानीय बाज़ार भी उपलब्ध हो सकेगा. अभी तक हमारे देश में शहद की प्रति व्यक्ति खपत 8 ग्राम से भी कम है, जबकि जर्मनी के लोग शहद की गुणवत्ता एवं उपयोगिता से परिचित होने के कारण विश्व में सर्वाधिक मात्रा में इसका उपयोग करते हैं. वहां प्रति व्यक्ति शहद की खपत क़रीब दो किलोग्राम है, जिससे जर्मनी सर्वाधिक शहद का आयात करता है. जबकि विश्व में सर्वाधिक शहद का निर्यात चीन द्वारा प्रतिवर्ष 80 हज़ार टन किया जाता है. यदि भारत में भी शहद उत्पादकों को प्रोत्साहित किया जाए तो रोज़गार सृजन के साथ–साथ ग्रामीणों के जीवन स्तर में भी सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिल सकते हैं.

feedback@chauthiduniya.com

A TELEECARE Product

xcite mobile phones

बैटरी फुल.... फीचर्स फुल.....

लाइफ वन्डरफुल.....

लम्बी बैटरी

2 सिम कार्ड (GSM+GSM)

5.6cm TFT स्क्रीन (Ultra High Clarity)

FM वायरलैस रेडियो

X450

- टॉर्च
- ब्लूटूथ
- एक्सपेन्डेबल मेमोरी 4 जीबी तक
- वीजीए कैमरा
- यूएसबी चार्जर
- म्यूज़िक प्लेयर (MP3)

xciting price Rs. 2899/-*

X440

टॉर्च -
ब्लूटूथ -
एक्सपेन्डेबल मेमोरी - 4 जीबी तक
वीजीए कैमरा -
यूएसबी चार्जर -
म्यूज़िक प्लेयर(MP3) -

xciting price Rs. 2499/-*

30 DAYS BATTERY BACKUP लम्बी बैटरी

2 सिम कार्ड (GSM+GSM)

4.5 cm स्क्रीन

TOUCH MASTI

- टच स्क्रिन (Ultra High Clarity TFT)
- वायरलैस रेडियो
- 5.6cm स्क्रीन
- एक्सपेन्डेबल मेमोरी 4 जीबी तक
- यूएसबी चार्जर
- म्यूज़िक प्लेयर

xciting price Rs.2449/-*

115

CAMERA MASTI

- कैमरा
- रेडियो एफएम
- म्यूज़िक प्लेयर
- एक्सपेन्डेबल मेमोरी 4 जीबी तक
- यूएसबी चार्जर
- म्यूज़िक प्लेयर

xciting price Rs.1999/-*

215i

MUSIC MASTI

- वीजीए कैमरा
- 2सिम कार्ड (GSM+GSM)
- टच स्क्रीन (Ultra High Clarity TFT)
- 4 स्टीरीओ स्पीकर
- रेडियो एफएम
- म्यूज़िक प्लेयर(एम पी 3)
- एम पी 4(Video Playback)
- म्यूज़िक शेकर

xciting price Rs.3799/-*

315

MULTIMEDIA MASTI

- वीजीए कैमरा
- 2सिम कार्ड (GSM+GSM)
- अल्ट्रा स्लिम
- 5.6cm टच स्क्रीन (Ultra High Clarity TFT)
- 2 स्टीरीओ स्पीकर
- रेडियो एफएम
- म्यूज़िक प्लेयर(एम पी 3)
- एम पी 4(Video Playback)
- म्यूज़िक शेकर
- 2,62,000 कलर स्क्रीन

xciting price Rs.3950/-* Free 1 GB Memory Card

415

Limited time offer. Stocks also available outside the offer.

CUSTOMER CARE 91-11-46555676 www.xcitemobile.in

TELEECARE group: xcite mobile phones | ZEN mobile phones Coming Soon...

Specifications are the subject to change without any prior notice. Services and some features may be dependent on the network services/content providers SIM card compability of the devices used and the content formats supported. *Talktime and standby time are affected by network preferences type of SIM cards connected accessories and various activities.e.g. games. #Prices are subject to change without prior notice. Conditions Apply

एम जे अकबर

आतंकी ख़तरों के प्रति हमारी तैयारी

मुंबई पर आतंकी हमले ने भारत को हिला कर रख दिया था. इस हमले ने पूरी दुनिया को अचंभित कर दिया. उसके बाद लोगों की नाराज़गी ने गुस्से का रूप ले लिया. बाद में उनके गुस्से का उफान कम होने लगा. अब साल भर बाद यह हमारी विस्मृति का हिस्सा बन चुका है. 9/11 पर हमले के बाद आतंकवाद के प्रति अमेरिका की तत्काल प्रतिक्रिया उसकी सबसे बड़ी प्राथमिकता थी. कई हिस्सों में बंटी हमारी प्रतिक्रिया भी दबी सी रही, लेकिन वाशिंगटन से स्पष्ट संदेश आया कि अमेरिका को भड़काने की कोशिश करने वालों को ख़त्म कर दिया जाएगा, चाहे इसके लिए उसे कोई भी क़ीमत चुकानी पड़े. वहीं हम एक फंसे कोबरा के सामने बीन बजाते हैं और उसे एक संगीत का नाम दे देते हैं. इसके बाद हम ख़ुद इस संगीत की धुन पर सो जाते हैं.

सरकार पर दोष मढ़ना आसान और निराधार दोनों है. हर सरकार अपने पास एक थर्मामीटर रखती है और ज़मीनी तापमान के मुताबिक़ उसका स्तर भी बढ़ाती-घटाती रहती है. यदि वह गर्म होता है तो उससे ऊष्मा निकलेगी. जैसा कि दिल्ली में नवंबर और जनवरी के दौरान काफ़ी तेज़ी से हुआ. यदि वह ठंडा है तो उसी मुताबिक़ दिल्ली भी शांत रहेगी. हमारे विपक्ष को दोष देने का भी कोई मतलब नहीं है. हमारे पास एक ऐसी विपक्षी पार्टी है, जो बिना शक्तिशाली हुए ही शक्तिविहीन हो गई है. राजनीतिज्ञ भी नागरिकों की तरह सिर्फ़ संकल्प लेते हैं. हमारी संवेदनशीलता शा-लीनता की संस्कृति से निष्क्रिय हो चुकी है. यहां तक कि टेलीविज़न के ड्रामे द्वारा भी इस ज़ख्म पर मरहम लगाने का काम किया जाता रहा है. एक बार जब दृश्य सामने आता है, हमारी बेचैनी धीरे धीरे ख़ामोशी में बिखर जाती है. यह मुमकिन है कि पाकिस्तानी मिलिट्री, इंटेलिजेंस और राजनीतिक प्रतिष्ठान हमारे बारे में ज़्यादा समझ रखते हैं, बनिस्बत उनके बारे में जो हमारी समझ है. मुमकिन है कि पाकिस्तान हमें एक ऐसे कमज़ोर मुल्क की तरह आंकता है, जिसे महज़ खानापूर्ति करके संतुष्ट किया जा सकता है. 26/11 की पहली सालगिरह पर सिर्फ़ पाकिस्तान ही हमारी कमज़ोरियों की खिल्ली नहीं उड़ा रहा होगा, बल्कि वाशिंगटन भी हमारे देश पर मुस्करा रहा होगा. उस देश पर, जिसकी लाचारी ही उसकी मज़बूती है, जो बिल्कुल अलग तरीक़े से आने वाली आपदा से निपटता है. पिछले साल हम इस यक़ीन पर गर्व कर रहे थे कि अमेरिका हमें एक क्षेत्रीय शक्ति बनने में मदद कर रहा है और हम एक विश्व शक्ति बनने की राह पर हैं. वहीं पिछले दिनों अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने दुनिया भर की राजधानियों में बीजिंग को यह बताने के लिए चुना कि भारत उनके लिए क्या महत्व रखता है. ओबामा के मुताबिक़, भारत एक ऐसा राष्ट्र है, जिसकी सीमाएं दुनिया भर में बराबरी के रिश्ते क़ायम करने के रास्ते में रोड़ा है. इसके साथ ही उन्होंने बीजिंग को यह भी यक़ीन दिलाया कि चीन और अमेरिका इस समस्या को सुलझा लेंगे.

दुबले-पतले और चतुर-चालाक ओबामा ने अपने लंबे हाथों से चांटा मारना सीख लिया है. डॉ. ए क्यू ख़ान ने हाल में यह ख़ुलासा किया कि चीन ने पाकिस्तानी परमाणु हथियार कार्यक्रम में ईंधन और तकनीक के ज़रिए मदद की, जो कि परमाणु हथियारों के अवैध प्रसार की मिसाल है. इत्तेफ़ाक से ओबामा के पास इस मसले पर कहने के लिए शब्द नहीं थे. इससे अचंभित होने की ज़रूरत नहीं है. हालांकि यदि भारत में परमाणु प्रसार पर एक या दो दफ़ा चर्चा भी होती है तो स्थितियां बिल्कुल अलग नज़र आने लगती हैं. युद्ध कतई शक्ति का सूचक नहीं है. यह एक ऐसा भ्रम है, जिसे हमने अपनी निष्क्रियता को छिपाने की नीति के तहत बढ़ावा दिया है. इस तर्क द्वारा हमेशा हमें धोखा दिया जा रहा है. वह भी तब से, जबसे हमें बताया जा रहा है कि युद्ध के नतीजे घातक हो सकते हैं. लेकिन हमारे पास इसके रणनीतिक, राजनीतिक और आर्थिक उपाय हैं, जिनके ज़रिए हम इस समस्या का इलाज राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कारगर तरीक़े से कर सकते हैं. एक साल पहले पूरी दुनिया की सहानुभूति हमारे साथ थी. हमने अपनी निष्क्रियता से इसे गंवा दिया. पाकिस्तान अपनी पैंतरेबाज़ी से कम नुक़सानदायक वायदे कर अंतरराष्ट्रीय निंदा और दंड से बच निकला. दिल्ली ने जो वक़्त गंवा दिया, उसे इस्लामाबाद ने झपट लिया. पिछले सप्ताह राष्ट्रपति ज़रदारी ने पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी (पीपीपी) की केंद्रीय कार्यकारी समिति के साथ एक मीटिंग की. लाहौर की प्रख्यात संपादक नजमा सेठी के मुताबिक़, इस मीटिंग के दौरान प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री दोनों ने कश्मीर समस्या के समाधान पर पाकिस्तान की मज़बूत स्थिति का फिर से दावा किया. संभवत: यह पहले उठाया जाने वाला क़दम है. डॉ. मनमोहन सिंह के वाशिंगटन दौरे के दौरान ओबामा उन पर दबाव डाल सकते हैं और उन्हें कश्मीर पर एक ऐसे समझौते के लिए तैयार होने को कह सकते हैं, जो पाकिस्तान को भी मंजूर हो. मुमकिन है कि मनमोहन सिंह के इस अच्छे व्यवहार के लिए पुरस्कार के तौर पर ओबामा उन्हें भविष्य में सुरक्षा परिषद में सीट का लॉलीपॉप थमा दें. पाकिस्तान के साथ सामान्य हालात एक अच्छा विचार है, लेकिन जब हम सामान्य हालात की बात करते हैं तो हमें इसके सही मतलब को भी समझने की ज़रूरत है. क्या इसका मतलब शिमला समझौते के पुरस्कारस्वरूप जम्मू और कश्मीर के मानचित्र पर अनापेक्षित आतंकवाद झेलना है? यह कहा जाता है कि हमारे पास विदेश नीति नहीं है, यह महज़ पाकिस्तान नीति है. हम इससे आगे बढ़ सकते थे, यहां तक कि हमारे पास अभी भी पाकिस्तान के प्रति कोई नीति ही नहीं है. हम कई देशों के साथ श्रृंखलाबद्ध रूप से जुड़े नज़र आते हैं. यह दुनिया एक पुराना बाज़ार है, जिसमें आप अपने मुताबिक़ विभिन्न दुकानों से किसी भी क़ीमत पर कुछ भी सौदेबाज़ी कर सकते हैं. यह एक ऐसी जगह है, जो बिना किसी लाग लपेट के आपस में जुड़ती है.

कुछ नेताओं ने हेराफेरी का सहारा लिया और भारत को एक कमज़ोर शक्ति के तौर पर पेश किया. यदि हम गार्डेन ऑफ इडेन (यह माना जाता है कि दुनिया का सबसे पहला आदमी और उसकी पत्नी यहीं रहते थे) के बीच रह रहे होते तो यह हमारे लिए उल्लेखनीय उपलब्धि होती. लेकिन हम उन इलाक़ों में रहते हैं, जहां आतंकवाद हमेशा सुर्ख़ियों में रहता है. भूलने की यह बीमारी अगले आतंकवादी हमले को एक दावत है.

कुछ नेताओं ने हेराफेरी का सहारा लिया और भारत को एक कमज़ोर शक्ति के तौर पर पेश किया. यदि हम गार्डेन ऑफ इडेन (यह माना जाता है कि दुनिया का सबसे पहला आदमी और उसकी पत्नी यहीं रहते थे) के बीच रह रहे होते तो यह हमारे लिए उल्लेखनीय उपलब्धि होती.

feedback@chauthiduniya.com

रवि किशोर

धर्म, राजनीति और हमारा संविधान

भारतीय संविधान में यह स्पष्ट तौर पर भावना व्यक्त की गई है कि राज्य और राजनीति को सभी प्रकार के धार्मिक विश्वासों से दूर रहना चाहिए, लेकिन दुर्भाग्यवश भारतीय राजनीतिक परिदृश्य और रोज़मर्रा की राजनीति में खुलेआम या छिपे तौर पर धर्म को वोट बैंक की राजनीति के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है. कांग्रेस पर हमेशा से अल्पसंख्यकों के तुष्टिकरण का आरोप लगता रहा है और ख़ुद को वह अल्पसंख्यकों के मसीहा के रूप में पेश करती रही है. लेकिन, ऐसी राजनीति के पीछे छिपा तथ्य अल्पसंख्यकों, ख़ासकर धर्म विशेष के मानने वालों के वोट पर क़ब्ज़ा जमाना है और शायद इसीलिए अल्पसंख्यकों की दशा आज भी कमोबेश वैसी की वैसी है, जैसी आज़ादी के वक़्त थी. पिछली सदी के अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध और नब्बे के दशक के पूर्वार्द्ध तक राजनीतिक दलों द्वारा धर्म के अप्रत्यक्ष इस्तेमाल की वजह से भारतीय राजनीति में धर्म अहम हो गया. इससे देश में समाज के बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदाय के बीच की खाई चौड़ी हो गई. राम जन्मभूमि आंदोलन ने धार्मिक भावना के आधार पर भारतीय समाज का ध्रुवीकरण कर दिया और इसकी परिणति हमें बाबरी मस्जिद विध्वंस के रूप में देखने को मिली. इसने न केवल समाज को बांट दिया, बल्कि दो बड़े धार्मिक समुदाय के लोगों के बीच संदेह के बीज बो दिए. हालांकि धार्मिक भेदभाव ने दोनों समुदायों के एक छोटे से हिस्से को ही प्रभावित किया, लेकिन धीरे-धीरे इसका दायरा बढ़ता गया और ज़्यादा से ज़्यादा लोग इसमें सहभागी होते चले गए. यही ख़तरनाक साबित हुआ. सभी मुद्दों पर धार्मिक मुलम्मा चढ़ाकर देखा जाने लगा और पंथ निरपेक्ष लोगों की आवाज़ दबाई जाने लगी. भाजपा के शानदार उत्थान और नब्बे के दशक के उत्तरार्द्ध में सत्ता हासिल करने के पीछे मुख्य कारण राम जन्मभूमि आंदोलन (अगर इसे आंदोलन कहा जा सकता है तो) और इस वजह से हिंदू मतदाताओं के वोटों का ध्रुवीकरण रहा. बाबरी मस्जिद विध्वंस की घटना को मुसलमानों ने सहज नहीं लिया और वे विकल्प तलाशने लगे. उत्तर प्रदेश की समाजवादी पार्टी को इसका सबसे बड़ा फ़ायदा हुआ.

लेकिन, पिछले आम चुनाव में यह रुझान बिल्कुल उल्टा देखने को मिला. राजनीतिक दलों का ट्रैक रिकॉर्ड और विकास चुनाव में मुद्दा बनकर उभरा और मतदाताओं ने धार्मिक मुद्दों के आधार पर चुनाव लड़ने उतरे क्षेत्रीय या राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को तगड़ा झटका दिया. बिहार की नीतीश कुमार की पार्टी जदयू इसका उदाहरण है, जिसने भाजपा गठबंधन का घटक होने के बावजूद पिछले संसदीय चुनाव में शानदार प्रदर्शन किया. ऐसा सिर्फ़ इसलिए, क्योंकि नीतीश कुमार अपने गठबंधन साथी को धार्मिक मुद्दों को हवा देने से रोकने में सक्षम हैं और राज्य के विकास को उन्होंने प्राथमिकता की सूची में तथा धार्मिक मामलों को निर्णय प्रक्रिया से दूर रखा. साथ ही उन्होंने मुसलमानों सहित समाज के सभी वंचित समुदायों के उत्थान के लिए कार्यक्रम चलाए. उनकी इन कोशिशों की इसलिए प्रशंसा की जानी चाहिए, क्योंकि राज्य कानून एवं व्यवस्था, सड़क, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा के मामले में पटरी पर आता दिखा. दु:ख की बात यह है कि लोग धार्मिक भावनाओं का दोहन और निजी फ़ायदे के लिए समाज को बांटने की कोशिश कर रहे हैं. ऐसा सिर्फ़ अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह बात सभी धार्मिक समूहों पर लागू होती है. जो लोग राष्ट्रहित के बारे में सोचते हैं, उन्हें इसका ध्यान रखना चाहिए. मुद्दा चाहे जो भी हो, देशहित की अनदेखी कर कोई समझौता नहीं किया जाना चाहिए. अगर किसी मैच में पाकिस्तान के हाथों भारत की हार हो जाती है तो इसका जश्न नहीं मनाया जाना चाहिए. क्रिकेट के मैच में पाकिस्तान के हाथों मात खाने के बाद मैंने लोगों को रोशनी जलाकर और पटाखे फोड़कर ख़ुशियों का इज़हार करते देखा है. मैं ख़ुद बहुत हद तक पंथनिरपेक्षता को मानता हूं, ऐसे दृश्यों को बर्दाश्त नहीं कर पाता और बिना सोए पूरी रात गुज़र जाती है. कोई भी भारतीय इस बात को बर्दाश्त नहीं करेगा. लेकिन ये बकवास मिसालें हैं, इसलिए इन्हें ख़ास तवज्जो नहीं दी जानी चाहिए. प्रमुख धार्मिक समूहों को इस मामले में संयम और सहनशीलता का परिचय देना होगा. विघटनकारी ताक़तें ऐसी बातों को बढ़ावा देती हैं. उनका मक़सद ही भारत को कमज़ोर करना है. ऐसे लोग किसी धर्म के नहीं होते, बल्कि ख़ास वर्ग के होते हैं और पूरी दुनिया में देखे जा सकते हैं. उनका मुख्य मक़सद समाज को बांटना होता है. मैं तो यही कहूंगा कि वैश्विक आतंकवादी सही अर्थों में पंथनिरपेक्ष चरित्र के कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनकी हरकतें किसी ख़ास धर्म को लक्षित नहीं होती हैं. हालांकि इस विषय पर बात करते हुए वंदे मातरम् गाने के मसले पर देवबंद द्वारा दिखाई गई परिपक्वता, राष्ट्र गौरव के भाव और भावना की मैं सराहना करता हूं. जिस तरह से इस्लामी विद्वानों ने इस मुद्दे पर अपनी प्रतिक्रिया दी है, वह प्रशंसनीय है और ज़रूरी है कि सभी इसका अनुकरण करें.

आरंभ में वंदे मातरम् गायन को इस्लामी सिद्धांतों के ख़िलाफ़ बताया गया था, लेकिन बाद में देवबंद के उलेमाओं द्वारा यह गीत गाने के ख़िलाफ़ फतवा के बारे में कहा गया कि वे राष्ट्रगीत गाने से मुसलमानों को नहीं रोकेंगे. दृष्टिकोण में यह परिवर्तन आध्यात्मिक गुरु श्री श्री रविशंकर के देवबंद जाकर बातचीत करने और कुछ मुस्लिम नेताओं से मुलाक़ात के बाद आया था. श्री श्री रविशंकर द्वारा जारी प्रेस विज्ञप्ति में बताया गया था कि उलेमाओं ने वंदे मातरम् के प्रति अपने निर्णय में बदलाव हिंदू और मुस्लिम समुदाय को एक साथ लाने के उद्देश्य से किया है. सभी पार्टियों को इसे सही दिशा में सकारात्मक क़दम मानना चाहिए और इससे प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए. जहां तक भारतीय संविधान में वर्णित धर्म और धर्म निरपेक्षता से संबंधित उपबंधों की बात है तो धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार मौलिक अधिकारों में शामिल है. यह भारतीय नागरिकों को इच्छानुसार धर्म विशेष को मानने की आज़ादी देता है. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 में नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार दिए गए हैं. संविधान के अनुच्छेद 25 में अंत:करण की और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता का इस प्रकार उल्लेख किया गया है, *लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अंत:करण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा.*

हालांकि संविधान की प्रस्तावना में पंथ निरपेक्ष शब्द 1976 में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम के ज़रिए शामिल किया गया, लेकिन संविधान के दर्शन में पंथ निरपेक्षता की भावना आरंभ से ही शामिल है. भारत बहु धार्मिक, बहु जातीय और बहु सांस्कृतिक बहुलता वाला देश है. विविधता में एकता भारतीय लोकाचार का सौंदर्य और विशिष्टता है. बहुलवाद भारतीय संस्कृति की कुंजी है. संविधान की प्रस्तावना में मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक तत्वों के आधार पर भारत को पंथ निरपेक्ष राज्य कहा जाता है. समानता की भावना इसका मूलाधार है. नागरिकों के साथ कोई भेदभाव नहीं बरता जाता. नागरिकों के अधिकार और राज्य के दायित्व एवं कर्तव्य के बीच संतुलन समान सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करता है. जहां तक भारतीय पंथ निरपेक्षता की अवधारणा की बात है तो यह पंथ निरपेक्षता के अमेरिकन और यूरोपीय मॉडल के सर्वथा विपरीत है.

भारतीय संविधान अमेरिकी और यूरोपीय मॉडल से अलग अवधारणा है. यह चर्च को राज्य से अलग करता है और सेपरेशन ऑफ़ वॉल मॉडल के रूप में जाना जाता है. संविधान सभा की बहसों में पंथ निरपेक्षता की अवधारणा पर विस्तार से विचार किया गया था. हमारे संविधान निर्माता भारतीय धर्म निरपेक्ष राज्य के बारे में क्या सोचते थे, इसे जानने का यह अच्छा स्रोत है. संविधान सभा की बहसों का बारीकी से अध्ययन करने पर पता चलता है कि धर्म निरपेक्षता की अवधारणा और मुद्दे को किस दिशा में ले जाया जाना चाहिए, इस बारे में वास्तव में आम सहमति थी. आख़िरकार यह सबको समान आदर के सिद्धांत पर आधारित है. इसे *सर्वधर्म समभाव* भी कहते हैं. इसे व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई और यह संविधान का हिस्सा भी बना. समस्त भारतवासियों को संविधान द्वारा अंगीकृत पंथ निरपेक्षता की भावना, जो कि सर्वधर्म समभाव की भावना पर आधारित है, का आदर करना चाहिए. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी हमेशा इस भावना को प्रचारित किया, *ईश्वर अल्लाह तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान.*

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback@chauthiduniya.com

जहां चाह, वहां राह

राजस्थान के भरतपुर ज़िले की दूध संग्रहण की ख़बर वाकई राहत पहुंचाती है. पढ़कर हर्ष हुआ कि ऐसे भी लोग हैं, जो तमाम मजबूरियों को दरकिनार कर अपना रास्ता ख़ुद बनाते हैं. यह हमारे लिए एक सबक है कि हमें हाथ पर हाथ रखकर सरकार को कोसने की जगह खुद कुछ करने की कोशिश करनी चाहिए.

पंडित ओमशंकर तिवारी, *भोपाल, मध्य प्रदेश.*

ज्ञानवर्द्धक आलेख

08 नवंबर के अंक में प्रकाशित रीतिका सोनाली का आलेख कैंसर: समय से इलाज जरूरी सामयिक एवं प्रासंगिक है. कैंसर की विकरालता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, किंतु उसके अनुरूप जागरूकता का अभाव सर्वत्र दिखाई देता है.

स्वास्थ्य मंत्रालय को चाहिए कि वह लोगों को इस संदर्भ में जागरूक करे. साथ ही ऐसी कोई व्यवस्था करे कि इसकी जांच कराना सभी के लिए अनिवार्य हो जाए.

मिथिलेश, *भागलपुर, बिहार.*

मूर्तियों की तस्करी

चौथी दुनिया के 9-15 नवंबर के अंक में मूर्तियों की तस्करी के बारे में पढ़कर काफी दु:ख हुआ. जिन मंदिरों में जाकर हम अपना शीश झुकाते हैं, मन्नतें मांगते हैं, वहीं चोरी करके लोग कितना पाप कमा रहे हैं. कई सवाल मन में उठे, जैसे कि ऐसी घटनाएं सीमावर्ती क्षेत्रों में ही देखने को क्यों मिल रही हैं और खासकर कोसी में? लगता है कि इसमें पुलिस, प्रशासन, अपराधियों और मंदिरों के कर्मचारियों यानी सबकी मिलीभगत है.

विवेक, *पटना कॉलेज, बिहार.*

पर्यावरण का रखें ध्यान

पूर्णिया में ईंट भट्ठों से पर्यावरण को होने वाले नुक़सान के बारे में पढ़ा. समझ में नहीं आता कि सरकार पैसों के आगे इतनी अंधी क्यों हो जाती है. वैसे भी पूरी दुनिया पर ग्लोबल वार्मिंग का ख़तरा मंडरा रहा है, इसके बावजूद हम पर्यावरण को निरंतर नुक़सान पहुंचा रहे हैं. जबकि बाकी देश ईंट भट्ठों और पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले अन्य कल-कारखानों को आबादी से दूर स्थापित करते हैं. हमें उनसे सबक लेने की ज़रूरत है.

परशुराम पासवान, *भागलपुर, बिहार.*

दुनिया की ख़बरों पर नज़र

मैं चौथी दुनिया का नियमित पाठक हूं. पत्र में राजनीतिक गतिविधियों से लेकर क्षेत्रीय और मनोरंजन जगत तक सभी विषयों को स्थान दिया गया है, लेकिन मेरी राय है कि अंतरराष्ट्रीय घटनाओं पर और भी लेख प्रकाशित किए जाएं. ख़ास तौर से अमेरिका और चीन में होने वाली हलचलों पर.

मोहम्मद सलीम, *मुंबई, महाराष्ट्र.*

बधाई

प्रत्येक अंक में कुंभ से जुड़ी जानकारी चौथी दुनिया को छोड़कर दूसरी जगह कहीं भी प्रकाशित नहीं हो रही है. जैसी सामग्री हमें इस अखबार में पढ़ने को मिल रही है, वह खुद में एक मिसाल है. मेरी बधाई स्वीकार करें.

शैलेश लहेरू, *जामनगर, गुजरात.*

नक्सली और सरकार

आवरण कथा नक्सलियों का चक्रव्यूह पढ़ी. यह जानकर काफी दु:ख होता है कि इस देश में नक्सली समस्या के प्रति अभी भी सरकार का रवैया उपेक्षापूर्ण और गैर जिम्मेदाराना है. सरकार और नक्सलियों के बीच द्विपक्षीय बातचीत जारी रहनी चाहिए.

अभिलाषा रानाडे, *नासिक, महाराष्ट्र.*

खेद है

चौथी दुनिया के 16-22 नवंबर के अंक में पृष्ठ संख्या 12 पर प्रकाशित जादू की छड़ी...शीर्षक आलेख के साथ दी गई तस्वीर में कमलेश्वर और कुंवरपाल सिंह के साथ नमिता सिंह शामिल नहीं हैं, लेकिन भूलवश उनका नाम प्रकाशित हो गया है जिसका हमें खेद है.

संपादक

पाठक अपने विचार और सुझाव हमें इस पते पर भेज सकते हैं-
संपादक, चौथी दुनिया, एफ-2, सेक्टर - 11
नोएडा (उत्तर प्रदेश) पिन-201301
ई-मेल पता : feedback@chauthiduniya.com

जब तोप मुक़ाबिल हो

संतोष भारतीय

क्या अब भी मीडिया एकजुट नहीं होगा?

आईबीएन के मुंबई और पुणे के दफ़्तरों पर हमला हुआ तथा भारी तोड़फोड़ हुई. हमलावरों ने अपना काम कर रहे पत्रकारों पर शारीरिक हमले किए, जिनमें महिला पत्रकार बड़ी संख्या में शिकार बनीं. हमलावर शिवसेना के थे तथा उनका कहना था कि बाल ठाकरे की आलोचना नहीं होनी चाहिए. यह समाचार एक आम समाचारों की तरह अख़बारों में छपा और आम रिपोर्ट की तरह टेलीविज़न पर दिखाया गया.

पहले भी ऐसी घटनाएं होती थीं, लेकिन कभी-कभी. जब ज़्यादा गुस्सा आता था तो अख़बार या पत्रिका की प्रतियां फाड़ या उन्हें चौराहे पर जला कर विरोध प्रदर्शन किया जाता था. पत्रकारिता का पेशा ही ऐसा है जो लोगों को, ख़ासकर ताक़तवर लोगों को ख़ुशी नहीं देता, क्योंकि ताक़तवर लोग ही अन्याय और अत्याचार के पीछे होते हैं. ऐसे लोग राजनैतिक दलों में, अपराधी गुटों में और पैसे वाले तबके में बहुत बड़ी संख्या में हैं जो विरोध आयोजित करते हैं. वे नहीं चाहते कि उनके करतब या कमज़ोरियां आम लोगों के सामने आएं. ये आम लोग ही उनके शिकार या उनसे प्रभावित होते हैं, पर अंत में फ़ैसला भी ये कमज़ोर लोग ही लेते हैं. सही पत्रकारिता इन आम लोगों के लिए ही है.

अब ये ताक़तवर लोग चाहते हैं कि अख़बार या टीवी पर वही दिखाया जाए, जो वे चाहते हैं. उन्हें नहीं पसंद कि कोई उनके कामों का हिसाब मांगे, कोई उनकी गतिविधियों का ब्योरा दे. इसलिए इन्होंने विरोध प्रदर्शन की जगह शारीरिक हमले और तोड़फोड़ की शैली अपनाई है. इनका लोकतंत्र से कोई लेना-देना नहीं है, इनका लोकतांत्रिक मूल्यों में कोई विश्वास नहीं है.

राजनैतिक दल राजनैतिक गिरोहों में तब्दील हो गए हैं. चुनाव में गए, जनता ने नकार दिया तो यह जनता की समस्याएं नहीं उठाएंगे, क्योंकि इन्हें विरोधी दल का रोल नहीं निभाना है, ये सिर्फ़ सत्ताधारी दल का रोल निभाना चाहते हैं. ये चुनाव में हार जाएं तो इन्हें गुस्सा आता है आम जनता पर कि क्यों उसने इन्हें वोट नहीं दिया. ये आम जनता को भी फूहड़ गालियां देते हैं, कुछ इस अंदाज़ में कि मानो इन्होंने जनता को बनाया है, जनता ने इन्हें नहीं. ये अपनी कमियां बताने पर, पत्रकारों पर जानलेवा हमला कराते हैं. लोकतंत्र का चौथा खंभा माना जाता है मीडिया को. मीडिया के पास एक अलिखित अधिकार है कि वह जनता के लिए किसी से, कैसा भी सवाल पूछ सकता है. वह ज़िम्मेदारी के साथ कार्यपालिका, विधायिका और राजनैतिक व्यवस्था एवं राजनैतिक कार्यकलाप से जुड़े लोगों के समाचार देता है. लोकतंत्र के चारों अंग एक दूसरे के साथ संतुलन बना कर चलते हैं तो लोकतंत्र ख़ुशबू बिखेरता है.

शिवसेना ने संगठित हमलों की शुरुआत की है, पिछले सालों में मुंबई में टेलीविज़न और प्रिंट के कई पत्रकार इसके शिकार हुए हैं. शिवसेना को अपने ऊपर की गई किसी तरह की आलोचना बर्दाश्त नहीं है. कल अगर न्यायपालिका ने उनके किसी नेता के ख़िलाफ़ फ़ैसला सुनाया तो यह संभव है कि वे न्यायालय में घुस जाएं और न्यायाधीश तथा वकीलों को पीटें और अपने अख़बारों में लिखें कि जज भगवान नहीं है जो उनके ख़िलाफ़ फ़ैसला लिखे.

चलिए, मान लेते हैं कि लोकतंत्र के ख़ात्मे की शुरुआत हो चुकी है, क्योंकि कार्यपालिका और विधायिका ऐसी सोच का मुक़ाबला ही नहीं करना चाहती. विधानसभा में जूते चप्पल तो चलते ही थे, कुर्सियां तोड़ी जाती थीं, पर अब तो एक सदस्य को पकड़ कर पीटा भी जाने लगा है. आम लोग भले अफ़सोस करें, पर लोकतंत्र के विरोध में काम कर रहे लोग बेशर्मी से मुस्कराते हुए ऐसे ही काम आगे करते रहने का वक्तव्य भी देते हैं. ऐसी ताक़तों को जनता हराती है, पर अगर इनकी बहुत छोटी संख्या भी विधानसभा में पहुंच जाए तो उसे नियंत्रित करने में वे क्यों असफल हो जाते हैं, जिन पर सरकार बनाने की ज़िम्मेवारी जनता ने डाली है. अगर इस राजनैतिक हमाम में सभी नंगे हो रहे हैं या हो चुके हैं तो मान लेना चाहिए कि हम लोकतंत्र के ख़ात्मे की ओर बढ़ना शुरू कर चुके हैं.

मीडिया के पास एक अलिखित अधिकार है कि वह जनता के लिए किसी से, कैसा भी सवाल पूछ सकता है. वह ज़िम्मेदारी के साथ कार्यपालिका, विधायिका और राजनैतिक व्यवस्था एवं राजनैतिक कार्यकलाप से जुड़े लोगों के समाचार देता है. लोकतंत्र के चारों अंग एक दूसरे के साथ संतुलन बना कर चलते हैं तो लोकतंत्र ख़ुशबू बिखेरता है.

इन सब के बीच ख़ुद मीडिया कहां है? मीडिया इस आत्मदंभ से पीड़ित है कि वह सर्वशक्तिमान है. हर चैनल और अख़बार समझ रहा है कि चाहे जो लिखो, चाहे जो दिखाओ, लोग सही समझ लेंगे. आगे रहने की अंधी दौड़ में दौड़ने वाले सच्चाई को कोसों पीछे छोड़े जा रहे हैं. अख़बारों में तो फिर भी इतनी शर्म बाक़ी है कि ग़लत साबित होने पर वे माफ़ी मांग लेते हैं, पर न्यूज़ चैनल तो ग़लत ख़बर ही नहीं, ग़लत तथ्य और असत्य को जानबूझ कर दिखा कर मुस्करा कर चल रहे हैं. बहुतों ने समाचार को मसखरी में बदल दिया है. इस पेशे में ऐसे लोगों का प्रवेश हो गया है जिन्हें न समाचार संकलन का ज्ञान है, न रिपोर्ट के सामाजिक-राजनैतिक और आर्थिक पक्ष की समझ. न ही वे समाचार के पीछे के तथ्यों को जानते हैं और न समाचार की गहराई का उन्हें पता है. इसीलिए समाचार के द्वारा पड़ने वाले प्रभाव का भी उन्हें पता नहीं होता. वे पता लगाना भी नहीं चाहते, क्योंकि वे इसे अपनी सामाजिक ज़िम्मेवारी नहीं मानते.

इसका परिणाम निकला है कि लोग अब मीडिया पर भरोसा नहीं करते. उन्हें लगता है कि हर कोई किसी न किसी राजनैतिक हित या व्यापारिक हित से जुड़ा है और उनकी लॉबिंग कर रहा है. बहुत से लोगों को यह भी लगता है कि पत्रकारिता के पेशे में जाना मतलब दलाली का लाइसेंस मिल जाना है. ज़िले में छोटे अख़बारों से जुड़े और राजधानियों में बड़े अख़बारों से जुड़े कई पत्रकारों को बस इन्हीं कामों के लिए जाना जाता है. इसके बीच असली पत्रकारिता ग़ायब होती जा रही है. आम आदमी, उसका दुःख सुख, उससे जुड़े मुद्दे, उसकी तक़लीफ़ मीडिया का विषय नहीं है. लोग भी अलग खड़े हैं कि जब आपको उनकी चिंता नहीं है तो वे क्यों आपकी चिंता करें.

लोगों की छोड़ दें, आपस में भी जलन इतनी है कि एक पर हमला दूसरे के मनोरंजन का विषय बन जाता है. वे दिन गए, जब एक पर हमला सब पर हमला माना जाता था और सभी एक होकर आवाज़ उठाते थे. आम लोगों को लगता था कि उनके बारे में लिखने वालों पर हमले का मतलब उन पर हमला होना है तथा जो ऐसी हरकतें करते थे, वे लोगों की नज़र में अपराध करते थे. आज ऐसा नहीं है. मीडिया जनता से अलग हो गया है तो जनता भी मीडिया से अलग हो गई है. जिस मीडिया पर लोकतंत्र के पक्ष में रिपोर्ट करने की ज़िम्मेवारी है, वह लोकतंत्र की बुनियाद से हट गया है. इसीलिए मीडिया बंट गया है. बंटते-बंटते सभी अकेले हो गए हैं. कोई भी उन्हें धमका लेता है, तोड़फोड़ कर, पीट कर चला जाता है, पर उनकी कलम नहीं उठती और न ही कैमरा ऑन होता है. सभी अकेले-अकेले इस स्थिति का शिकार हो रहे हैं.

किससे अपील करें कि पहले अपनी सामाजिक और पत्रकारीय ज़िम्मेवारी समझिए. अपने ऊपर दूसरों के हित संरक्षण का लगा तमगा हटाइए. राजनैतिक गिरावट का हिस्सा बनने से अपने को रोकिए और उनके बारे में लिखना और बोलना सीखिए जो इस देश में सौ करोड़ हैं, समस्याओं से पीड़ित हैं, कमज़ोर हैं, लेकिन फिर भी लोकतंत्र चाहते हैं. उनके ख़िलाफ़ लिखना सीखिए, जो लोकतंत्र के ख़िलाफ़ हैं. यह सही है कि हम कलम रख सकते हैं, रिवाल्वर नहीं. हमारे लिखने से गिरोहों में प्रतिक्रिया होती है तो अच्छा है, पर उनमें साख तो बढ़नी चाहिए जिनके लिए लिखते हैं.

आज ज़रूरत है कि मीडिया के अंगों में, संस्थानों में एक सहमति बने और आपस में संवाद हो. संवाद ईमानदारी से हो, संवाद व्यापक हो. रिपोर्ट को विदूषक स्वरूप से निकालना चाहिए और पेशे में आए लोगों को पत्रकारिता का बुनियादी मतलब बताना चाहिए. अगर ऐसा नहीं होता है तो महाराष्ट्र में घटी घटना से प्रेरित होकर कोई गिरोह दिल्ली सहित प्रदेशों की राजधानियों में भी ऐसे कांड कर सकता है. क्या मीडिया आपस में एकजुट होने का संकल्प ले सकता है?

संपादक
editor.chauthiduniya.com

भाजपा का सबसे ज़्यादा नुक़सान संघ ने किया

मनीष कुमार

बचपन में हमने एक कहानी पढ़ी थी कि कबूतर के अंडों को यूं ही पड़े देखकर कुछ बच्चों को लगा कि इन्हें एक घोसले में रखा जाए, ताकि अंडे ख़राब होने से बच जाएं. फिर बच्चों ने बड़े अरमान से एक घोसला बनाया. उसके बाद अंडों को उठाकर उस घोसले में रख दिया. जब कबूतर वापस लौटा तो उसने अंडों को ज़मीन पर फेंक दिया, जिससे सारे अंडे टूट गए. बच्चे इस बात से अनजान थे कि छूने मात्र से ही वे अंडे ख़राब हो जाएंगे. इस समय भाजपा की हालत अंडे की तरह है और संघ बच्चों की तरह उससे खेल रहा है. नतीजा क्या निकलने वाला है, यह भी तय है.

आज की राजनीति का सबसे अहम सवाल यह है कि भारतीय जनता पार्टी का नया अध्यक्ष कौन होगा? यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि आने वाले दस सालों की राजनीति इस फ़ैसले से तय होगी. भारतीय जनता पार्टी के अगले अध्यक्ष का सवाल पहले कभी भी इतना महत्वपूर्ण नहीं रहा. यह एक ऐसा सवाल है, जिस पर पूरे देश की जनता की नज़र है. इसके साथ ही भारतीय जनता पार्टी के तमाम कार्यकर्ता और नेताओं की नज़र है, एनडीए में शामिल पार्टियों की नज़र है. सरकार, कांग्रेस और दूसरी भाजपा विरोधी पार्टियों की नज़र है. यह इतना महत्वपूर्ण इसलिए है, क्योंकि अगले अध्यक्ष की योग्यता और उसकी योग्यता से भारतीय जनता पार्टी की चाल, चरित्र और चेहरा तय होगा और यह भी तय होगा कि क्या भारतीय जनता पार्टी इसके बाद मज़बूत होगी या फिर टूट कर बिखर जाएगी.

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी के रिश्तों के बारे में हमेशा यही कहा गया कि भाजपा एक स्वतंत्र संगठन है और संघ इसके आंतरिक मामलों में कोई दखलंदाजी नहीं करता है. जबसे यह बात सामने आई है कि अगले अध्यक्ष महाराष्ट्र के नितिन गडकरी होंगे, तबसे संघ परिवार का यह झूठ लोगों के सामने आ गया. संघ परिवार ने लोगों से अब तक यह सच छुपाए रखा था. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक सांस्कृतिक और सामाजिक संगठन है, जो भारतीय जनता पार्टी के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप नहीं करता. लाख कहने के बावजूद देश की जनता सच जानती है कि भाजपा का रिमोट कंट्रोल कहां है. यह बात और है कि मोहन भागवत ने एक टीवी इंटरव्यू में सच का सामना किया और सीधी बात कह दी कि संघ चाहता है कि अरुण जेटली, सुषमा स्वराज, वैंकेया नायडू या अनंत कुमार में से कोई भाजपा का अध्यक्ष न बने.

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी के रिश्तों के बारे में हमेशा यही कहा गया कि भाजपा एक स्वतंत्र संगठन है और संघ इसके आंतरिक मामलों में कोई दखलंदाजी नहीं करता है. जबसे यह बात सामने आई है कि अगले अध्यक्ष महाराष्ट्र के नितिन गडकरी होंगे, तबसे संघ परिवार का यह झूठ लोगों के सामने आ गया.

भाजपा को बचाने की संघ की मुहिम से पार्टी का जो नुक़सान हुआ है, उसकी भरपाई करना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है. संघ प्रमुख मोहन भागवत ने अपने बयान से एक ही झटके में भाजपा की साख खत्म कर दी. भाजपा संघ की कठपुतली है, यह साफ़ हो गया. अब तक जो नेता पार्टी चला रहे थे, वे अचानक खुद को असहाय महसूस करने लगे. संघ ने देश को यह बता दिया कि उसके मनमुताबिक़ ही अगला अध्यक्ष होगा. इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है कि भाजपा के नेता, कार्यकर्ता, समर्थक और देशवासी क्या चाहते हैं. भाजपा के अध्यक्ष का चुनाव नहीं होगा. अगर होगा भी तो मात्र दिखावा होना है, क्योंकि चुनाव से पहले ही यह साफ़ हो गया है कि भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय नेताओं में से कोई भी अगला अध्यक्ष नहीं बनेगा. संघ ने यह साबित किया है कि भाजपा के पास चाहे जितना भी जन समर्थन हो, संगठन के मामले में संघ अपनी मनमानी करने के लिए आज़ाद है. अब सवाल यह है कि भाजपा का अगला अध्यक्ष किस मुंह से यह कहेगा कि वह 27 फ़ीसदी लोगों का नेता है. अगले अध्यक्ष का चेहरा जब भी लोगों के सामने आएगा तो यही लगेगा कि यह संघ द्वारा बनाया गया अध्यक्ष है. भाजपा कार्यकर्ताओं के लिए भी यह शर्मनाक स्थिति होगी, क्योंकि अब उन्हें यह लग रहा है कि पार्टी के लिए काम करने से ज़्यादा जरूरी संघ के नुमाइंदों को खुश रखना है. संघ ने भाजपा के नेताओं की साख भी खत्म कर दी. कार्यकर्ताओं को यह लग रहा है कि भाजपा के नेताओं के बस में कुछ भी नहीं है. भाजपा में अब जो होगा, वह संघ के दिशा-निर्देश पर ही होगा. संघ के सौजन्य से भाजपा संगठन जनता के सामने बेनक़ाब हो चुका है.

यह बात भी सही है कि अरुण जेटली, सुषमा स्वराज, वैंकेया नायडू और अनंत कुमार जन समर्थन वाले नेता नहीं हैं. आडवाणी जी के सहारे चारों नेताओं ने दिल्ली के मुख्यालय से ही संगठन पर अपनी पकड़ मज़बूत बना ली. यही वजह है कि आज वे संघ के फैसले का विरोध करने में असमर्थ हैं. यह भी याद रखना ज़रूरी है कि इनमें से एक राज्यसभा में विपक्ष के नेता हैं और एक लोकसभा में विपक्ष का नेता बनने जा रही हैं. अगर अब भी ये जनता के बीच जाते हैं तो संघ की रणनीति को ध्वस्त कर सकते हैं. कल क्या होगा, यह कहना अभी मुमकिन नहीं है. संघ के फैसले का असर भाजपा पर बुरा होगा, यह भी तय है.

जनता को यह जानने का पूरा अधिकार है कि देश की मुख्य विपक्षी पार्टी के नेता का चुनाव कौन कर रहा है, क्यों कर रहा है और कैसे कर रहा है. विपक्ष किसके दिशा-निर्देश और तर्क पर चलेगा. वह कौन है, जिसके नेतृत्व में सरकार के कामकाज पर नज़र रखी जाएगी. प्रजातंत्र में अगर सरकार मनमानी करती है तो जनता की एकमात्र आशा की किरण विपक्ष है. संघ के संगठनों में प्रजातांत्रिक मूल्यों की कमी है. संघ के संगठनों में चुनाव नहीं होते, लेकिन संघ अपने दूसरे संगठनों में क्या करता है, उससे जनता को सरोकार नहीं है, लेकिन देश की मुख्य विपक्षी पार्टी जो भी होती है, वह जनता के भविष्य से जुड़ी होती है. विपक्षी पार्टी भी सरकार की तरह ही महत्वपूर्ण होती है. विपक्ष का कमज़ोर होना देश में प्रजातंत्र के कमज़ोर होने का संकेत है. इसलिए यह सवाल करना ज़रूरी है कि संघ की मंशा क्या है?

manish@chauthiduniya.com

गिलगिट-बलतिस्तान के पिछड़े इलाक़ों के समुचित विकास और अर्थव्यवस्था की मज़बूती के लिए ज़रूरी है कि घोषित पैकेज के समान वितरण में सावधानी बरती जाए.

पाकिस्तान का दिशाहीन लोकतंत्र और आज़ाद कश्मीर-II

गिलगिट-बलतिस्तान 2007 रिफॉर्म

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि किस तरह पाकिस्तान के दो राज्य गिलगिट और बलतिस्तान में असंतोष व्याप्त है. हालांकि इस दिशा में ज़रूरी क़दम भी उठाए गए. इन समस्याओं से निपटने के लिए कौन से फ़ैसले लिए गए और उनका क्या असर हुआ? आइए, जानते हैं इस अंक में.

अकदस वहीद

राष्ट्रपति मुशर्रफ ने 23 अक्टूबर 2007 के गिलगिट दौरे के समय लीगल फ्रेमवर्क 1999 में संशोधन के पैकेज की घोषणा की. इस पैकेज के मुताबिक़, लेजिसलेटिव काउंसिल को विकसित करने के साथ ही लेजिसलेटिव असेंबली का गठन किया गया और उप मुख्य कार्यकारी अधिकारी को इसका मुख्य कार्यकारी अधिकारी बनाया गया. कश्मीर मामलों के मंत्री को लेजिसलेटिव असेंबली का चेयरमैन बनाया गया था. उस समय असेंबली के सदस्यों के पास मुख्य कार्यकारी अधिकारी और उपाध्यक्ष के ख़िलाफ़ अविश्वास प्रस्ताव लाने का अधिकार था. इसके अलावा असेंबली को उत्तरी इलाक़ों के लिए वार्षिक बजट पारित करने का भी विशेषाधिकार दिया गया था. उल्लेखनीय है कि पैकेज ने उत्तरी इलाक़े को आज़ाद जम्मू और कश्मीर (एजेके) के क़रीब ला दिया. यह सब कश्मीर मुद्दे के प्रति बग़ैर किसी पूर्वाग्रह के किया गया. इसीलिए पहली बार ऑल पार्टी हुर्रियत कांफ्रेंस (एपीएचसी) सहित सभी कश्मीरी नेतृत्व ने पैकेज का स्वागत किया. इसके पहले एजेके नेतृत्व और भारत अधिकृत कश्मीर की जनता ने इस रिफॉर्म का विरोध किया था. कश्मीर के मसले पर भारत और पाकिस्तान के बीच वार्ता प्रक्रिया का एजेके द्वारा स्वागत किया जा रहा था. दरअसल, सभी आधिकारिक समझौते उत्तरी इलाक़ों के लिए ज़रूरी थे. हालांकि 2007 के रिफॉर्म पैकेज में भी ख़ामियां हैं. सबसे बड़ी समस्या यह है कि इस पैकेज में कश्मीर मामलों के मंत्री के पास कई व्यापक शक्तियां हैं. वह लेजिसलेटिव असेंबली का पदेन चेयरमैन भी होता है. उदाहरण के तौर पर वह न तो असेंबली के प्रति जवाबदेह है और न ही इसके द्वारा उस पर महाभियोग लगाया जा सकता है. उसके ख़िलाफ़ अविश्वास प्रस्ताव भी नहीं लाया जा सकता है, जबकि वह लेजिसलेटिव द्वारा पारित किसी भी विधेयक पर वीटो का इस्तेमाल कर सकता है. साथ ही किसी भी क़ानून को प्रभावी बनाने के लिए उसकी मंजूरी आवश्यक है. चेयरमैन के अधिकारों को किसी फोरम पर चुनौती नहीं दी जा सकती है.

इसका निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि चेयरमैन को इतने सारे अधिकार और शक्तियां देकर संघीय सरकार ने साफ़ तौर पर एक ऐसा पैकेज दिया है, जो औपचारिक अधिक और लाभकारी कम है यानी बदतर है. इस पैकेज में न्यायिक सुधार के मुद्दे पर बिल्कुल चुप्पी बरती गई है, जबकि इसकी अदद ज़रूरत है. नतीजतन, पैकेज में कई अच्छे पहलू होने के बावजूद व्यापक तौर पर इसकी आलोचना की गई. आम धारणा यह है कि इन शक्तियों को एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी को बड़ी आसानी से सौंप दिया गया. एक सच्चे नेतृत्व और बुनियादी मानवीय अधिकारों के अभाव ने देश की राष्ट्रीय सुरक्षा पर गहरा असर डाला है. यदि गिलगिट-बलतिस्तान रणनीतिक तौर पर अहम हैं और वहां विविध पृष्ठभूमि के लोग रहते हैं तो हालात पहले से भी ख़तरनाक हो जाते हैं. इस बात की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि उत्तरी इलाक़ा अंतरराष्ट्रीय तौर पर शक्तिशाली और प्रभावशाली इस्लामिक समुदायों का गढ़ है और यदि क़ानून व्यवस्था पूरी तरह बहाल नहीं की गई तो विदेशी शक्तियां इस इलाक़े में इन समुदायों की सुरक्षा के नाम पर हस्तक्षेप कर सकती हैं. उत्तरी क्षेत्र में ऐसी शक्तियों के लालच की वजह यह है कि उन्हें चीन को मात देने का अवसर मिल जाएगा, जो इस क्षेत्र में अपना वर्चस्व पहले से बनाए हुए है. इसी तरह सुरक्षा एवं राजनीतिक प्रभाव की वजह से पाकिस्तानी शिया मुसलमानों का पड़ोसी ईरान से घनिष्ठ संबंध भी क़ायम हो जाएगा. पूरी दुनिया के शिया मुसलमान 1979 के बाद की ईरानी क्रांति से भावनात्मक तौर से जुड़े हुए हैं. ईरान पाकिस्तान में शिया मुसलमानों की सुरक्षा के प्रति काफी गंभीर है और यह बात ज़ाहिर हो चुकी है कि अतीत में कई शिया संगठनों को तेहरान से वित्तीय सहायता मिलती थी. इसीलिए शिया मुसलमानों की सुरक्षा सुनिश्चित करना सरकार के लिए अहम है. साथ ही ऐसा ईरान के साथ अपने संबंधों को मज़बूत करने के लिहाज़ से भी अहम है. संवैधानिक और राजनीतिक तकरारों के बावजूद गिलगिट में कई सामाजिक-आर्थिक विकास के क़दम उठाए जा रहे हैं. गिलगिट शहर पहले की अपेक्षा अधिक आधुनिक हो रहा है. नई सड़कों, भवनों और मोबाइल फोन कंपनी आदि से यह विकसित भी हो रहा है. काराकोरम हाईवे ने वाक़ई इस इलाक़े के लोगों की ज़िंदगी पूरी तरह बदल दी है. उत्तरी क्षेत्र के वाणिज्य मंडल के अध्यक्ष एवं मशहूर व्यापारी हाजी मोहम्मद हुसैन अपने व्यक्तिगत अनुभव साझा करते हुए कहते हैं, 1984 तक मैं ख़ुद प्लास्टिक के बने जूते पहनता था और राशन, चीनी एवं घी के कंटेनर लिए पूरा दिन लाइन में गुज़ार देता था. जब चीन के साथ काराकोरम हाईवे से व्यापार शुरू हुआ तो उस वक़्त मैंने छोटे स्तर पर व्यापार शुरू किया. आज मैं एक बड़ा व्यापारी बन चुका हूं और हर साल इसमें करोड़ों का इज़ाफ़ा हो रहा है. अभी हाल में जितने भी लोग करोड़पति बने हैं, उसकी एकमात्र वजह है चीन के साथ व्यापार. देश के शहरी इलाक़ों में लकड़ी बेचना भी इस पीढ़ी की आय का एक प्रमुख स्रोत है. इस आर्थिक बदलाव का श्रेय भी आगा खां फाउंडेशन और कई ग़ैर सरकारी संगठनों को जाता है, जिन्होंने स्थानीय लोगों के रोज़गार के लिए कई परियोजनाएं शुरू कीं. स्थानीय शिक्षित लोगों के लिए भी कई लाभकारी नौकरियों के अवसर उपलब्ध कराए गए हैं. काराकोरम हाईवे के चौड़ीकरण और इलाक़े में रेलवे ट्रैक की घोषणा के बाद रीयल स्टेट के दाम आसमान छूने लगे हैं. यह माना जा रहा है कि जब चीनी इंजीनियर और विशेषज्ञ इस परियोजना पर काम शुरू करेंगे तो रोज़गार के कई अवसर भी पैदा होंगे. एक बार जब रेलवे ट्रैक बिछ जाएगा तो रावलपिंडी और गिलगिट के बीच नौ घंटे की दूरी कम हो जाएगी. इसी तरह चीन के व्यापारिक केंद्र काशग़र और गिलगिट के बीच भी आठ घंटे की दूरी कम हो जाएगी. पाकिस्तान और चीन दोनों देशों ने सीमा पर रहने वाले अपने नागरिकों के लिए कई व्यापारिक साझेदारी के क़दम उठाए हैं.

इन क्षेत्रों में सूचना एवं संचार सुविधाओं ने स्थानीय और ग़ैर स्थानीय दोनों स्तरों के निवेशकों के लिए रास्ता खोल दिया है, जिससे दोनों देशों के बीच संबंधों का एक मज़बूत पुल तैयार हो रहा है. गिलगिट शहर में पठानकोट की अच्छी ख़ासी आबादी रहती है और स्थानीय व्यापारिक गतिविधियों पर भी उसका वर्चस्व है. यह जातीय लिंक साफ़ तौर पर व्यापारियों को लुभाएगा और नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस (एनडब्ल्यूएफपी) के व्यापारियों को अपना भाग्य आजमाने के लिए गिलगिट की ओर आकर्षित करेगा. हालांकि एक भय भी मौजूद है कि पख्तूनों के आने से स्थानीय आबादी कहीं अल्पसंख्यक न हो जाए. फिर भी शहर में किसी भी संगठित पख्तून विरोधी आंदोलन ने अपना सिर नहीं उठाया है. बदलता आर्थिक माहौल, नए व्यापारिक अवसर और ग़ैर सरकारी संगठनों के उदय जैसे कारकों ने लोगों की राजनीतिक एवं सामाजिक सोच पर भी काफ़ी व्यापक असर डाला है. उदाहरण के तौर पर कई लोगों के चीन के साथ व्यापारिक संबंध वैवाहिक संबंधों में बदल रहे हैं. चीनी भाषा सीखने का रुझान भी तेज़ी से बढ़ रहा है और कई बच्चे, ख़ासकर व्यवसायी इस भाषा को नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ मॉडर्न लैंग्वेज (एनयूएमएल) इस्लामाबाद में सीख रहे हैं. काराकोरम यूनिवर्सिटी भी चाइनीज़ स्टडी को फोकस कर रहा है और हर कोई इसके बेहतर नतीजे की कल्पना कर सकता है.

इन इलाक़ों में अभी भी राष्ट्रीय दैनिक समाचारपत्र एक दिन बाद पहुंचते हैं. इस तथ्य के बावजूद दर्ज़न भर चैनलों की पहुंच इन इलाक़ों में है, जो लोगों में राजनीतिक जागरूकता लाने का काम कर रहे हैं. कई स्थानीय समाचारपत्र और पत्रिकाएं बाज़ार में पकड़ बना रहे हैं. प्रकाशक समूह के-2 एक दैनिक और दो साप्ताहिक प्रकाशित कर रहा है, जो अच्छा-ख़ासा बिज़नेस कर रहे हैं. कई विभिन्न साप्ताहिकों ने सरकारी विभागों और एजेंसियों में व्याप्त भ्रष्टाचार की ख़बरों को छापने में स्वस्थ प्रतिद्वंद्विता दिखाई, जिससे प्रशासन पर नियंत्रण रखने में मदद मिलती है. इस तरह नियंत्रण और संतुलन की व्यवस्था धीरे-धीरे अपनी जड़ें जमा रही है. विभिन्न संप्रदायों और जनजातियों में जनसांख्यकीय अनुपात का मुद्दा भी विभिन्न इलाक़ों में चर्चा का विषय बन रहा है. ख़ासकर गिलगिट में, जहां यह दो कारणों से तेज़ी से बढ़ रहा है. पहली बात यह कि चीन के साथ काराकोरम मार्ग से व्यवसाय का रास्ता खुलने से पूरे देश के व्यवसायी गिलगिट की ओर रुख़ कर रहे हैं. जबसे पाकिस्तान को शंघाई कारपोरेशन काउंसिल में पर्यवेक्षक का दर्ज़ा दिया गया और इस्लामाबाद एवं बीजिंग के बीच मुक्त व्यापार पर समझौता हुआ, तभी से पाकिस्तान की व्यापारिक गतिविधियों में उछाल दर्ज़ की जा रही है. इन्हीं कारणों से कई लोग अब इस शहर को अपना स्थायी निवास बना रहे हैं. जबसे पाकिस्तान की आबादी सुन्नी बहुल हुई है, इन शहरों में ज़्यादातर अप्रवासी इसी सुन्नी समुदाय के हैं. इस वजह से स्थानीय शिया मुसलमान इस सच्चाई से डर रहे हैं कि वे इस शहर में अल्पसंख्यक आबादी के तौर पर शुमार हो जाएंगे.

निष्कर्ष

हाल में संवैधानिक पैकेज की घोषणा और उच्चतम न्यायालय के आदेश के बाद उत्तरी क्षेत्र संवैधानिक अधिकार और सत्ता हस्तांतरण का गवाह रहा है. हालांकि अभी काफ़ी कुछ किया जाना बाक़ी है. लोकतांत्रिक ढांचे एवं सामाजिक विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने की ज़रूरत है. नौकरशाही को अपनी शक्तियों के बंटवारे में परेशानियां ज़रूर आएंगी, लेकिन विश्वास की बहाली और लोगों के यक़ीन को क़ायम रखने का कोई दूसरा विकल्प भी नहीं है. नीतियां बनाते समय कुछ बिंदुओं पर ख़ास ध्यान देने की ज़रूरत है.

हाल ही में घोषित पैकेज ने कश्मीर मामलों के मंत्री और उत्तरी क्षेत्र को व्यापक अधिकार दिए. इन अधिकारों को चुने हुए स्थानीय प्रतिनिधियों को स्थानांतरित किया जाना चाहिए, ताकि चेयरमैन की भूमिका को औपचारिक बनाया जा सके. जैसा कि एजेके के राष्ट्रपति के मामले में किया गया है. उत्तरी क्षेत्र में सांप्रदायिकता की इस बीमारी से निपटने के लिए व्यापक नीति बनाई जानी चाहिए. सांप्रदायिकता यहां दानव बन चुकी है, क्योंकि एक प्रभावशाली राजनीतिक नेतृत्व के अभाव में कई विभिन्न संगठनों के स्वार्थ सामने आ रहे हैं. आज समय की मांग है कि जिन परिवारों ने संप्रदायवाद का ख़ामियाज़ा उठाया है, उनका आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक पुनर्वास ज़रूरी है. साथ ही 1988 से हुई हिंसा की वारदातों की जांच के लिए एक स्वतंत्र आयोग का भी गठन किया जा सकता है, ताकि इन विवादों की वजह का पता लगाया जा सके, जिनके चलते इन क्षेत्रों में जान-माल का काफ़ी नुक़सान हुआ. इस आयोग के कार्यक्षेत्र का दायरा महज़ जांच और पड़ताल तक ही सीमित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि क़ानून व्यवस्था को लागू करने के लिहाज़ से इसके पास ख़ुद की सुझाई सिफ़ारिशों को लागू करने का भी अधिकार होना चाहिए.

जब सांप्रदायिकता से निपटा जाए तो इस मामले में विदेशी ताक़तों के शामिल होने पर ध्यान ज़रूर दिया जाना चाहिए. पाकिस्तान-चीन का गर्मजोशी भरा संबंध, ख़ासकर ग्वादर बंदरगाह के निर्माण के बाद, कुछ क्षेत्रीय व अंतरराष्ट्रीय हितों के ख़िलाफ़ शुरू हुआ और इसीलिए उत्तरी क्षेत्रों में सांप्रदायिक अशांति के लिए इनकी भूमिका को कतई नकारा नहीं जा सकता है. यहां यह ध्यान देना ग़ैर ज़रूरी नहीं होगा कि कई बुद्धिजीवी और नीति निर्माता अमेरिका को सलाह दे रहे हैं कि वह शिया और सुन्नी के बीच विभाजन की खाई बढ़ा दे, ताकि मुस्लिम समाज आपस में बंटा रहे. इराक इसकी बेहतरीन मिसाल है. इसी आधार पर पाकिस्तान और ईरान में मतभेद पैदा करने की कोशिश जारी है. राजनीतिक दलों से संपर्क किया जाना चाहिए और उन्हें हर मुद्दे पर स्थानीय लोगों के विचार जानने में मदद करनी चाहिए. इसी तरह लेजिसलेटिव असेंबली को भी उचित महत्व और बजट तैयार एवं पारित करने के मामले में पूरा अधिकार दिया जाना चाहिए. क़ायदे-क़ानून के मुताबिक़, उत्तरी इलाक़ों में सेना और नौकरशाहों के हस्तक्षेप को पूरी तरह ख़त्म कर देना चाहिए. ऐसा महसूस किया गया है कि यदि संशोधन समय पर नहीं किए गए तो ऐसी आवाज़ें वाशिंगटन और संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार आयोग से भी उठ सकती हैं. इसके अलावा गिलगिट-बलतिस्तान की सिविल सोसायटी और राजनीतिक नेतृत्व को यह बात समझनी चाहिए कि यह न सिर्फ़ इस्लामाबाद की नाकामी और ख़ामी है, बल्कि मौजूदा हालात के लिए वे भी ज़िम्मेदार हैं, क्योंकि अपने बुनियादी अधिकारों की दिशा में वे भी पर्याप्त नतीजे हासिल करने के लिए संयुक्त राजनीतिक मुहिम छेड़ने में असक्षम साबित हुए हैं. उनमें आंतरिक तौर पर मतभेद, सांप्रदायिकता और नौकरशाही के बीच समझौते ने उनके इस मिशन को बुरी तरह प्रभावित किया है. गिलगिट-बलतिस्तान के नेताओं को समान अधिकार हासिल करने और अपनी आवाज़ उठाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर लॉबी करने की ज़रूरत है. राजनीतिक दल और मीडिया ज़रूर उनका सहयोग करेंगे. मुल्क को एक साथ रखने के लिए उन्हें अपना संघर्ष इस तरह जारी रखना चाहिए कि कश्मीर की ऐतिहासिक और क़ानूनी प्रतिष्ठा पर किसी तरह की आंच न आने पाए.

(लेखिका पाकिस्तान से हैं और वहां चल रही लोकतांत्रिक प्रक्रिया की विश्लेषक हैं.)

feedback@chauthiduniya.com

यह उस शख़्स की दास्तां है, जो एक दशक तक मोसाद की आंखों में धूल झोंकता रहा, लेकिन लाख कोशिशों के बावजूद बच नहीं सका.

ख़ुफ़िया एजेंसियों के सीक्रेट

नाज़ी युद्ध अपराधियों के ख़िलाफ़ मोसाद का मिशन

इज़रायल का ख़ुफ़िया आतंक

इज़रायली कोर्ट में इक़मैन के ट्रायल के दौरान का दृश्य.

एडोल्फ हिटलर एक ऐसा नाम है, जिसे शायद ही कोई भूल सकता है. आख़िर कोई भूल भी कैसे सकता है. इसके कारनामे ही कुछ ऐसे रहे हैं कि इसे भूलना इतिहास के एक अहम हिस्से को भूलने जैसा है. एक बार यह मान भी लें कि हमारे जेहन से हिटलर कहीं गुम हो गया है तो ऐसे में उसके कारनामे को याद रखने की उम्मीद बेमानी ही होगी. मुमकिन है हम और आप भूल जाएं, लेकिन इज़रायल के लिए हिटलर नाम के नासूर को भूलना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है. आख़िर अपनी मौत के कई सालों बाद भी हिटलर क्यों इज़रायलियों की आंखों की किरकिरी बना हुआ है? इसके पीछे की दास्तां भी कम ख़ौफ़नाक नहीं है. बात 1944 की है, दूसरा विश्व युद्ध अपने चरम पर था. हर तरफ़ हिटलर की नाज़ी सेना का कोहराम मचा हुआ था. इसी साल नाज़ियों ने हंगरी पर क़ब्ज़ा किया. उसके बाद नाज़ी सेना के एक बड़े ओहदेदार को हंगरी भेजा गया, ताकि वहां की समस्याओं पर क़ाबू पाने में किसी तरह की परेशानी न हो. युद्ध के दौरान लाखों लोगों को बसाने का ज़िम्मा इसे दिया गया. इन लोगों में यहूदियों की तादाद काफ़ी अधिक थी यानी लगभग 4,30,000. लेकिन सुरक्षित बचाने के बजाय इस शख़्स ने सभी यहूदियों को काल के गाल में भेजने के लिए एक गैस चेंबर में क़ैद कर लिया. उसके बाद तो उनके हश्र का अंदाज़ा लगाना कतई मुश्किल नहीं है. दम घुटने की वजह से सभी यहूदियों को अपनी जान गंवानी पड़ी. मानवता को कलंकित करने वाले उस नरसंहार की दास्तां इतिहास के पन्नों में आज भी दर्ज़ है, जिसे लाख चाहने के बावजूद नहीं मिटाया जा सकता है. यह अभी तक का जघन्य और सबसे ख़ौफ़नाक मंजर था. इस कलंकित कारनामे को अंजाम देने वाला शख़्स कोई और नहीं, बल्कि नाज़ी पार्टी में काफ़ी बड़े ओहदे पर क़ाबिज़ जनरल एडोल्फ इक़मैन था, जिसके दिल में यहूदियों के ख़िलाफ़ सिर्फ़ नफ़रत ही नफ़रत थी. इसीलिए उसने इतनी बड़ी संख्या में यहूदियों को तड़प-तड़प कर मरने के लिए गैस चेंबर में छोड़ दिया था. एडोल्फ इक़मैन ने न सिर्फ़ इस कारनामे को बख़ूबी अंजाम दिया, बल्कि वह तो अपेक्षा से कहीं अधिक शातिर निकला. उसके इसी यहूदी विरोधी कारनामे ने उसे इज़रायल का सबसे बड़ा दुश्मन बना दिया.

द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी को बुरी तरह शिकस्त मिली. कई जर्मनवासियों को अपनी जान गंवानी पड़ी. नाज़ियों को भी जर्मनी के विरोधी देशों ने नहीं बख़्शा, लेकिन इन सबके बावजूद इक़मैन किसी तरह बच निकलने में कामयाब हो गया. इक़मैन यह बात अच्छी तरह जानता था कि लड़ाई में तो वह सुरक्षित बच निकला, लेकिन लाखों यहूदियों के क़त्लेआम की वजह से इज़रायल उसे यूं ही आसानी से छोड़ने वाला नहीं. इज़रायल ने इक़मैन को पकड़ने के लिए जाल बिछाना शुरू किया. इज़रायली एजेंसी डाल-डाल होती तो इक़मैन पात-पात यानी हर दफ़ा इक़मैन इज़रायलियों को चकमा देने में कामयाब हो जाता. दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद इक़मैन अमेरिकी सेना की गिरफ़्त में आ गया, लेकिन तक़दीर ने यहां भी इक़मैन का ही साथ दिया. दरअसल अमेरिकी अधिकारियों को इक़मैन की असलियत का कतई अंदाज़ा नहीं था, नतीजतन वह अमेरिकी हिरासत से आज़ाद होने में सफ़ल हो गया. उसके बाद वह कई सालों तक जर्मनी में ही ख़ुफ़िया ठिकानों पर छुपकर रहा. इस बीच पकड़े जाने का ख़तरा उस पर हमेशा मंडराता रहा. जर्मनी में ही अब उस पर शिकंजा कसने की तैयारी होने लगी. इस ख़तरे को भांपकर इक़मैन ने जर्मनी छोड़ना ही बेहतर समझा. 1950 में वह इटली पहुंचा और उसके पीछे पहुंची इज़रायली ख़ुफ़िया एजेंसी मोसाद. लेकिन, एक बार फिर मोसाद की पकड़ में आते-आते वह बच निकला. दरअसल जिस इक़मैन की तलाश में मोसाद यहां पहुंची थी, वह शख़्स इटली कभी आया ही नहीं. जर्मनी से जो शख़्स इटली आया, वह था रिकार्डो क्लेमेंट. जी हां, यही वह नाम था, जो एडोल्फ इक़मैन ने अपनी पहचान छुपाने के लिए रखा था. इटली में ही इक़मैन एक बिशप एलोइस ह्यूडल के संपर्क में आया, जिसके जरिए वह रेड क्रॉस सोसायटी की मदद से मानवीय आधार पर अर्जेंटीना का पासपोर्ट और वीज़ा हासिल करने में सफल हो पाया. यह महज़ इत्तेफाक की ही बात है कि जिस शख़्स ने लाखों बेगुनाहों का बेरहमी से क़त्लेआम किया, उसे मदद भी मिली तो मानवीय आधार पर. लेकिन यह मदद एडोल्फ इक़मैन को नहीं, बल्कि रिकार्डो क्लेमेंट को मिली थी यानी उस शरणार्थी को, जिसने अपनी असली पहचान छुपा रखी थी. इस तरह 15 जुलाई 1950 को वह इटली से अर्जेंटीना पहुंचा. अगले दस सालों तक मोसाद की आंखों में वह धूल झोंकता रहा और अपनी ज़िंदगी मज़े से काटता रहा.

एडोल्फ इक़मैन.

यह सोचना कतई ग़लत और मोसाद की काबिलियत पर सवाल उठाना होगा कि इस दौरान मोसाद हाथ पर हाथ धरे बैठी रही. 1954 में मोसाद को अपने अर्जेंटीनाई जासूस से एक पोस्टकार्ड मिला, जिसमें यह ज़िक्र किया गया था कि एडोल्फ इक़मैन अपने पूरे परिवार के साथ अर्जेंटीना में ही रह रहा है, लेकिन इस बारे में मोसाद को पुख्ता जानकारी नहीं मिली. इसके बावजूद मोसाद लगातार इक़मैन की खोज में लगी रही. आख़िरकार 1959 में मोसाद इक़मैन की पूरी जानकारी हासिल करने में सफल हो गई. उसे अपने एजेंट से पता चला कि वाक़ई में इक़मैन ब्यूनस आयर्स में रिकार्डो क्लेमेंट के नाम से रह रहा है. इसके बाद इज़रायली सरकार ने लाखों यहूदियों के क़ातिल को पकड़ कर येरुसलम लाने के लिए एक ऑपरेशन की अनुमति दी, ताकि उस पर मुक़दमा चलाया जा सके. अप्रैल 1960 में इक़मैन की पहचान सुनिश्चित होने के बाद मोसाद ने एक कोवर्ट मिशन के तहत 11 मई 1960 को इक़मैन को हिरासत में लिया. एडोल्फ इक़मैन को पकड़ने में मोसाद को काफ़ी मेहनत-मशक्कत करनी पड़ी. क्लेमेंट (इक़मैन) को पकड़ने के लिए मोसाद ने उसके काम से वापस आने का इंतजार किया. जब क्लेमेंट अपनी गाड़ी से आ रहा था तो रास्ते में कुछ लोगों ने उससे मदद मांगी. क्लेमेंट जैसे ही मुड़ा, उस पर उन लोगों ने धावा बोल दिया और उसे अपने क़ब्ज़े में ले लिया. यानी वे लोग मोसाद के एजेंट थे और एडोल्फ इक़मैन अब मोसाद की गिरफ़्त में आ चुका था. इसके बाद इक़मैन पर मुक़दमों का दौर चला. हालांकि इक़मैन की हिरासत को लेकर कई देशों में तनाव का माहौल बना रहा, लेकिन इन सबका इज़रायल पर कोई असर नहीं पड़ा और आख़िरकार मुक़दमे की सुनवाई के बाद इक़मैन को फांसी की सज़ा सुनाई गई. फिर 31 मई 1962 को उसे फांसी दे दी गई. इस तरह मोसाद के काफी प्रयासों के बाद लाखों यहूदियों की हत्या के गुनहगार को उसके अंजाम तक पहुंचाया जा सका. बग़ैर मोसाद की मदद के यह मिशन पूरा भी नहीं हो सकता था.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

spice
www.spice-mobile.com
अब सब खल्लास!
मल्टी-सिम M-4580 की आकर्षक कीमत और भरपूर खूबियाँ करे सबको खल्लास।

M-4580
किलर खूबी: बड़ी बैट्री
25 दिनों का स्टैंड-बाइ टाइम और 10 घंटों का टॉकटाइम
मल्टी-सिम (GSM/GSM)
MP3 प्लेयर और FM रिकार्ड
वन-टच टॉर्च और करैन्सी चैकर
4 GB तक एक्सपैन्डेबल मैमोरी
BEST BUY PRICE: Rs. 2149

M-5252
10 दिनों का स्टैंड-बाइ टाइम और 4 घंटों का टॉकटाइम
मल्टी-सिम (GSM/GSM)
डिजिटल कैमेरा
बिल्ट-इन FM एंटेना
ड्यूअल LED टॉर्च
8 GB तक एक्सपैन्डेबल मैमोरी
BEST BUY PRICE: Rs. 3049

C-5300
सभी CDMA कनेक्शन के साथ चले
बड़ी स्क्रीन
डिजिटल कैमेरा
MP3 प्लेयर और FM रिकार्ड
एक्सपैन्डेबल मैमोरी
वन-टच टॉर्च
BEST BUY PRICE: Rs. 2999
बड़ी स्क्रीन | बड़ी मैमोरी | बड़ा साउण्ड | बड़ी बैट्री
big series
Spice Mobiles come loaded with:
emergic email2sms Mail on Mobile | Shuffle Ring tone | mGurujee | ibibo i build · i bond | REUTERS | Mobile Tracker
Registered Office: Spice Mobiles Ltd., D-1, Sector-3, Noida 201301, Uttar Pradesh, India. Fax: +91-120-4363845. E-mail: contactus@spicemobile.in. Spice Mobile Phones are available at all leading telecom outlets. *Conditions apply. Price features and specifications are subject to change without prior notice. Some of the listed capacity is used for phone functions and thus available capacity could be less than the quoted figure. Battery operation time may vary depending on network usage, environment, music and video formats.
www.itsaugust.com

मुस्ली पॉवर एक्सट्रा के प्रयोग से साइड इफेक्ट का कोई ख़तरा नहीं है. एक ख़ुशहाल शादीशुदा ज़िंदगी और बेहतर यौन संबंधों के साथ-साथ यह दवा शक्ति सप्लीमेंट का काम भी करती है.

मौसमी फल और सब्ज़ियों के सेवन से रहें स्वस्थ

रीतिका सोनाली

सर्दियों में रंग-बिरंगे खाने का मज़ा ही कुछ और है. इस मौसम में कई स्वास्थ्यवर्द्धक फल और सब्ज़ियां मिलने लगती हैं. इनके सेवन के कई फ़ायदे हैं. दिल्ली स्थित अपोलो अस्पताल की आहार विशेषज्ञ *डॉ करुणा चतुर्वेदी* के अनुसार सभी फलों और सब्जियों में कुछ ख़ास गुणकारी तत्व मौजूद होते हैं, जिनके पर्याप्त मात्रा में सेवन से सिर्फ़ सर्दियों में ही नहीं, पूरे वर्ष स्वस्थ रहा जा सकता है.

शिमला मिर्च

सब्ज़ियों में इस मौसम की ख़ास मेहमान है शिमला मिर्च. यह इंफेक्शन रोकने, ठंड से बचाने और रक्तचाप को संतुलित रखने में मददगार है. साथ ही यह स्ट्रोक से बचाने, पाचन तंत्र को सही रखने और कैलोरी कम करने में भी मदद करती है. यह हमारी आंखों और त्वचा की नरम झिल्ली के लिए भी लाभकारी है. इसका सेवन करने से शरीर में प्राकृतिक रूप से इंडोरफिन बनता है, जिससे व्यक्ति ख़ुद को भला-चंगा और प्रसन्न महसूस करता है. मधुमेह के रोगियों के लिए यह लाभकारी है. इसमें अन्य फ़ायदेमंद रासायनिक तत्वों के साथ प्रोटीन, विटामिन ए, सी, ई, पी और बी-1, बी-2 और बी-3 पाए जाते हैं.

बीट

चुकंदर का कत्थई लाल रंग बीटासायनीन नामक रसायन के कारण होता है. बीटासायनीन रक्त में घुल जाता है, जिससे रक्त द्वारा शरीर में ऑक्सीजन का प्रवाह तेज़ हो जाता है. इसमें मौजूद कैल्सियम, आयरन, फॉस्फोरस, प्रोटीन, विटामिन-ए एवं विटामिन-सी आदि रासायनिक पदार्थ कोलेस्ट्रॉल कम करने, तनाव घटाने, रक्तचाप संतुलित करने, रक्त साफ़ करने, किडनी और ब्लडर आदि की परेशानियां दूर करने में लाभदायक हैं.

पालक

एनीमिया, ट्यूमर, कैंसर, मोटापा, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, ब्रोंकाइटिस, कैंसर, ओस्टियोपोरोसिस, किडनी, लीवर और न जाने कितनी ही ऐसी बीमारियां हैं, जिनमें पालक फ़ायदेमंद है. वजह हैं इसके महत्वपूर्ण तत्व जैसे प्रोटीन, आयरन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्सियम, विटामिन ए, बी, सी और विटामिन के आदि. इसे कच्चे सलाद में मिलाकर खाएं या पकाकर, यह हर प्रकार से फ़ायदेमंद है. यह बढ़ती हुई उम्र को मात देने में भी मददगार है.

शकरकंद

मीठे स्वाद वाले शकरकंद में विटामिन ए और सी प्रचुर मात्रा में होता है. इसके एंटी ऑक्सीडेंट शरीर को नुक़सान पहुंचाने वाले सेल्स को नष्ट कर देते हैं. यह फल लो-ब्लड प्रेशर, डायबिटीज़ और कैंसर में लाभदायक है. इसके कैल्सियम, आयरन, फास्फोरस, पोटेशियम, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और फाइबर जैसे तत्व शरीर की कई कमियां दूर कर देते हैं.

फूलगोभी

शरीर तंदुरुस्त रखने के लिए फायटोकेमिकल्स बेहद ज़रूरी तत्व होते हैं, जो गोभी में मौजूद होते हैं. इसमें एलीसीन नामक रसायन मौजूद होते हैं, जिससे हृदय स्वस्थ रहता है और स्ट्रोक की आशंका कम हो जाती है. यह कोलेस्ट्रॉल लेवल का संतुलन बनाए रखने में मदद करता है. इसके अलावा विटामिन सी सेलेनियम के साथ मिलकर शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाती है. इसके अलावा विटामिन बी, फाइबर और अन्य रासायनिक तत्वों से भरी फूलगोभी कई प्रकार से फ़ायदेमंद है.

मूली

मूली दांत, मसूढ़े, बाल और नाख़ून के लिए काफ़ी फ़ायदेमंद मानी जाती है. बहती नाक, बढ़ा हुआ पेट, श्वास संबंधी परेशानी, टीबी, मधुमेह और भूख़ न लगने की स्थिति में मूली का सेवन फ़ायदेमंद है. मूली विटामिन ए, बी और सी, कैल्सियम, आयरन, फास्फोरस और प्रोटीन का महत्वपूर्ण स्रोत है.

गाजर

गाजर ज़्यादा ठंड और तेज़ हवा के विषम परिणामों से दूर रखती है. इसके अलावा पेट की परेशानियों, शारीरिक कमज़ोरी, रतौंधी और खांसी आदि में भी यह लाभदायक सिद्ध होती है. यह किडनी को मज़बूत बनाती है. इसमें मौजूद फोलिक एसिड, विटामिन बी के कई प्रकार व बीटा कैरोटीन कैंसर होने से रोकता है. इसमें पाया जाने वाला लीगनीन इम्यून सिस्टम को मज़बूत बनाता है. पोटाश सक्सिनेट एंटी हाइपरटेंसिव ड्रग का काम करता है.

गन्ना

ग्लायसेमिक इंडेक्स पर नीचे होने की वजह से यह शरीर को चुस्त-दुरुस्त रखता है. यह गले की ख़राश, सर्दी और फ़्लू में काफ़ी लाभकारी होता है. इसमें मौजूद रासायनिक तत्वों की वजह से यह पेट, किडनी, आंखों और दिमाग़ को दुरुस्त करता है. इसमें कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जिससे काम करने की ताक़त मिलती है. काफी ज़्यादा शारीरिक परिश्रम करने के बाद एक गिलास गन्ने का जूस पीने से शरीर में पानी की कमी पूरी हो जाती है. यह कैंसर से लड़ने में भी मदद करता है. पीलिया के उपचार में गन्ना बेहद लाभकारी है.

केरल के हर्बल वायग्रा की पूरी दुनिया में मांग

मुस्ली पॉवर एक्सट्रा या फिर कहिए हर्बल वायग्रा एक तरफ जहां बेहतर सेक्स जीवन के लिए काफी चर्चित है वहीं इस हर्बल प्रोडक्ट के सेवन से न सिर्फ़ सेक्स संबंधी बीमारियां दूर हुईं बल्कि किडनी और हॉर्ट के मरीजों के लिए भी फ़ायदेमंद है. यह दावा मुस्ली पॉवर एक्सट्रा बनाने वाली कंपनी कूनथ फार्माश्यूटिकल्स का है. इस कंपनी के चीफ मैनेजिंग डायरेक्टर डॉ. के.सी. अब्राहम का कहना है कि उनकी बनाई दवा को वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाईजेशन के साथ साथ केरल सरकार से भी मान्यता मिली हुई है. हमारे रिपोर्टर से बातचीत के दौरान डॉ. अब्राहम ने बताया कि मुस्ली पॉवर एक्सट्रा को बनाने के लिए उनकी कंपनी के वैज्ञानिकों ने कई तरह की स्वास्थ्य वर्धक जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल किया है. इनमें से सभी जड़ी-बूटियां भारत में पाई जाती हैं और सबसे ख़ास बात यह है कि इस दवा में हर्बल प्रोडक्ट के अलावा अन्य कोई धातु उपलब्ध नहीं है. इसी के चलते इस दवा के सेवन से किसी तरह के अतिरिक्त प्रभाव का असर या फिर साइड इफेक्ट नहीं होते हैं.

मुस्ली पॉवर एक्सट्रा को बनाने के लिए उनकी कंपनी के वैज्ञानिकों ने कई तरह की स्वास्थ्य वर्धक जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल किया है. इनमें से सभी जड़ी-बूटियां भारत में पाई जाती हैं और सबसे ख़ास बात यह है कि इस दवा में हर्बल प्रोडक्ट के अलावा अन्य कोई धातु उपलब्ध नहीं है.

डॉ के सी अब्राहम.

दिल्ली में आयोजित इंडिया इंटरनेशनल ट्रेड फेयर में केरल के इंडस्ट्री मिनिस्टर इलामनम करीम ने मुस्ली पॉवर एक्सट्रा के प्रमोशन स्टैंड पर शिरकत की. डॉ. अब्राहम ने बताया कि केरल राज्य की तरफ़ से उन्हें दुनिया भर में मुस्ली पॉवर एक्सट्रा की सप्लाई पहुंचाने में मदद मिल रही है. अब्राहम का कहना था कि खाड़ी देशों के साथ-साथ अमेरिका और कनाडा में मुस्ली पॉवर की काफ़ी मांग है. लेकिन मौजूदा मांग को कंपनी ट्रेड लाइलेंस के बाद पूरा करने में सक्षम होगी. यह पूछे जाने पर कि दुनियाभर में बिक रही सेक्स संबंधी कई दवाओं में स्टेरॉयड पाए जाने का मामला सामने आता रहता है. क्या मुस्ली पॉवर में भी किसी तरह के स्टेरॉयड का इस्तेमाल होता है. डॉ. अब्राहम ने बताया कि देशभर के कई लैब में परीक्षण के बाद यह बात साबित हो गई है कि मुस्ली पॉवर एक्सट्रा में किसी तरह का एस्टरॉयड मौजूद नहीं है. बेहतर यौन संबंधों और एक ख़ुशहाल शादीशुदा ज़िंदगी के साथ-साथ मुस्ली पॉवर एक स्वास्थ्य जीवन में भी सहायक है.

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

इंडिया इंटरनेशनल ट्रेड फेयर के दौरान केरल के उद्योग मंत्री इलामनम करीम के साथ मुस्ली पॉवर एक्सट्रा के सीएमडी डॉ केसी अब्राहम.

इस दवा के इस्तेमाल के तरीक़ों पर बात करते हुए कूनथ फार्माश्यूटिकल्स के विशेषज्ञ डॉ अब्दुल सलाम ने बताया कि इस दवा को 45 दिनों के एक कोर्स के तहत लिया जा सकता है. इस दवा को लेने के पहले चार-पांच दिनों तक कोई असर नहीं होता लेकिन दस से बारह दिनों में मुस्ली पॉवर अपना अच्छा असर दिखाने लगती है. एक कोर्स के बाद दो-तीन सालों तक यह दवा अपना असर बनाए रखती है और उसके बाद दोबारा एक कोर्स करने में भी कोई नुक़सान नहीं है. डॉ सलाम का कहना है कि इस दवा का सेवन पुरुषों के साथ-साथ महिलाएं भी कर सकती है और दोनों ही मामले में यह वांछित असर करता है. मुस्ली पॉवर महिलाओं में सेक्स की चाहत बढ़ाने के साथ मासिक विकार को भी दूर करने में सहायक है. कामकाजी महिलाओं के लिए यह एक शक्ति सप्लीमेंट का भी काम करती है. इस दवा का सेवन डायबिटीज़ के मरीज भी बिना किसी परेशानी के कर सकते हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

राशिफल

दिल्ली, 30 नवंबर-6 दिसंबर 2009

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल)
किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं तो उसमें सफलता के योग बने हुए हैं. संतान के दायित्व की पूर्ति होगी. व्यवसायिक सफलता मिलेगी. किसी कार्य के संपन्न होने से आत्मविश्वास बढ़ेगा. स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई)
पारिवारिक कार्यों में व्यस्त रहेंगे. उपहार, सम्मान, धन, यश और कीर्ति में वृद्धि होगी. किसी संबंधित अधिकारी का सहयोग मिलने की संभावना है. कोई ऐसा कार्य न करें, जिससे आपको समस्या का सामना करना पड़े.

मिथुन (21 मई से 20 जून)
वाणी पर संयम रखें, विवाद की स्थिति आ सकती है. स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के प्रति सचेत रहें. आर्थिक मामलों में लाभ मिलेगा. व्यस्तता अधिक रहेगी. जीवनसाथी का भरपूर सहयोग मिलेगा. मित्र या सहकर्मी के कारण तनाव मिल सकता है.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई)
व्यवसायिक प्रतिष्ठा बढ़ेगी. उपहार का लाभ मिलेगा, लेकिन क्रोध पर नियंत्रण रखें. शासन-सत्ता का लाभ मिलेगा. किसी कार्य के संपन्न होने से प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि होगी. सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ेगी. नेत्र संबंधी शिक़ायत हो सकती है.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त)
मकान, संपत्ति या निर्माण कार्य की दिशा में सफलता मिलेगी. विरोधी सक्रिय रहेंगे. कहीं अचानक यात्रा पर जाना पड़ सकता है. जीविका के क्षेत्र में प्रगति होगी. पारिवारिक प्रतिष्ठा बढ़ेगी. कर्ज़ लेने का प्रयास सफल होगा, लेकिन आर्थिक मामलों में जोख़िम न उठाएं.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर)
मांगलिक कार्यों की दिशा में चल रहे प्रयासों में सफलता मिलने के योग हैं. संबंधों में निकटता आएगी. आर्थिक दिशा में चल रहा प्रयास सफल होगा. जीवनसाथी के साथ तनाव की स्थिति पैदा हो सकती है. वाणी पर संयम बनाए रखें.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्टूबर)
कोई अधूरा काम पूरा होगा. समाज के किसी कार्य में अधिक व्यस्त रहेंगे. मनोरंजन के सुखद अवसर प्राप्त होंगे. धन, यश और कीर्ति में वृद्धि होगी. कुछ नया शुरू करने से पहले सोच-विचार कर ही निर्णय लें. आय के क्षेत्र में नए मार्ग खुलेंगे.

वृश्चिक (21 अक्टूबर से 20 नवंबर)
उपहार या सम्मान का लाभ मिलेगा. जीवनसाथी का सहयोग और सानिध्य मिलेगा. आर्थिक पक्ष मज़बूत होगा. राजनीतिक सहयोग मिलेगा. पारिवारिक प्रतिष्ठा बढ़ेगी. मैत्री संबंधों में प्रगाढ़ता आएगी. पेट संबंधी शिक़ायत होने की आशंका है.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर)
धन एवं वंश वृद्धि के योग. मकान और संपत्ति के मामले में सफलता मिलेगी. बहु प्रतीक्षित कार्य संपन्न होगा. यात्रा-देशाटन की स्थिति लाभप्रद होगी. आय और व्यय पर नियंत्रण बनाए रखें. घर के कार्यों में व्यस्त रहेंगे.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी)
किसी को अप्रिय बात न कहें, क्योंकि विवाद हो सकता है. जीवनसाथी के स्वास्थ्य और व्यवसायिक मामलों के प्रति सावधान रहें. अहंकार पर नियंत्रण रखें. किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं तो उसमें सफलता अवश्य प्राप्त होगी.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी)
जीविका के क्षेत्र में प्रगति होगी. उपहार या सम्मान का लाभ मिलेगा. किसी मित्र या सहयोगी पर विश्वास न करें, क्योंकि इससे आपको नुक़सान उठाना पड़ सकता है. धन, सम्मान, पद और प्रतिष्ठा की दिशा में लाभ मिलेगा.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च)
कहीं दूर यात्रा पर जाएंगे तो उसमें सफलता के योग बने हुए हैं. व्यर्थ की उलझनें रहेंगी. पिता का सहयोग मिलेगा. संतान के संबंध में कोई सुखद समाचार सुनने को मिलेगा. विरोधी परास्त होंगे. आय के नए रास्ते खुलेंगे

ज्योतिषाचार्य पं. सुदर्शन

2004 के अर्द्धकुंभ की याद लोग स्थायी कुंभ मेला कार्यालय यानी केंद्रीय नियंत्रण भवन, सीसीआर और एक बड़े मेला अस्पताल के निर्माण वर्ष के रूप में करते हैं.

बेहद हड़बड़ी में लिखी दर्द की दास्तां

अनंत विजय

इंदिरा गांधी की हत्या के पच्चीस साल पूरे हुए, साथ ही दिल्ली और देश के अन्य हिस्सों में सिखों के क़त्लेआम के भी. 31 अक्टूबर 1984 की सुबह दिल्ली में सफदरजंग रोड स्थित प्रधानमंत्री निवास पर इंदिरा गांधी की सुरक्षा में लगे दो लोगों ने उन्हें गोलियों से छलनी कर दिया था. लेकिन, उसके बाद दिल्ली में योजनाबद्ध तरीक़े से सिखों का क़त्लेआम किया गया. पच्चीस सालों से कई आयोगों ने इसकी जांच की, लेकिन अब तक इंसाफ़ हुआ हो, ऐसा लगता नहीं है. सिखों के नरसंहार के पच्चीस साल पूरे होने पर पत्रकार जरनैल सिंह की किताब *कब कटेगी चौरासी, सिख क़त्लेआम का सच* प्रकाशित हुई है. पेंग्विन प्रकाशन से आई यह किताब एक साथ तीन भाषाओं में छपी है. अंग्रेजी और हिंदी के अलावा इसका प्रकाशन पंजाबी भाषा में भी हुआ है. जरनैल सिंह वही पत्रकार हैं, जिन्होंने इस वर्ष हुए आम चुनाव के पहले एक संवाददाता सम्मेलन में देश के गृहमंत्री पी चिदंबरम पर जूता फेंका था. बाद में जरनैल ने अपने इस कृत्य पर अफ़सोस तो नहीं जताया था, लेकिन उन्होंने यह ज़रूर कहा था कि उन्हें इस कृत्य पर गर्व नहीं है.

1984 के सिख क़त्लेआम के पीड़ितों को समर्पित जरनैल की इस किताब की प्रस्तावना वरिष्ठ पत्रकार खुशवंत सिंह ने लिखी है. उन्होंने लिखा है, *कब कटेगी चौरासी* ...एक चौंका देने वाली किताब है, जिसे पढ़ने के बाद हर भारतीय को शर्मसार हो जाना चाहिए. यह दस्तावेज है दिल्ली और उत्तरी भारत के कई भागों में सिखों पर हुए नृशंस क़त्लेआम का, जो श्रीमती इंदिरा गांधी की उनके दो सिख अंगरक्षकों द्वारा हत्या किए जाने के बाद हुआ. खुशवंत सिंह ने अपनी छोटी सी प्रस्तावना में इस किताब को उन लोगों के लिए एक बड़ा अभियोग क़रार दिया है, जिन्होंने इस क़त्लेआम की साज़िश रची और अपने कारिंदों के मार्फ़त इसे अंजाम दिया. इस किताब की भूमिका में लेखक ने अपने पत्रकार बनने की कथा विस्तार से लिखी है. जब जरनैल पत्रकारिता के कोर्स में दाख़िले के लिए इंटरव्यू देने पहुंचे तो यूएनआई के पत्रकार बी बी नागपाल ने उनसे पंजाब में उग्रवाद के बारे में सवाल पूछे. जरनैल के जवाब से नागपाल संतुष्ट हुए और उन्हें दाख़िला मिल गया, लेकिन जरनैल के मन में यह सवाल मुंह बाए खड़ा था कि क्या किसी दूसरे प्रत्याशी से भी यही सवाल पूछा गया होगा. जरनैल के मन में इस सवाल का उठना जायज़ है, लेकिन सवाल तो खुशवंत सिंह से इस किताब की भूमिका लिखवाने पर मेरे मन में भी उठ रहे हैं. क्या जरनैल को खुशवंत सिंह से इतर कोई व्यक्ति नज़र नहीं आया? यह एक मानसिकता है, जिसका कोई इलाज नहीं है. हम हर मुस्लिम सहयोगी को भाई लगाकर ही संबोधित करते हैं. इसमें सांप्रदायिकता ढूंढना ग़लत है.

जरनैल सिंह का कहना है कि यह किताब इसलिए लिखी गई कि उस वक़्त मीडिया ने सही तरीक़े से अपनी ज़िम्मेदारी नहीं निभाई. इस क़त्लेआम को जितनी कवरेज मिलनी चाहिए थी, उतनी मिली नहीं और पीड़ितों का पक्ष संवेदनशील तरीक़े से सामने नहीं आ पाया. जरनैल ने इस मामले में दूरदर्शन के संदिग्ध रवैये पर भी सवाल खड़े किए हैं. जरनैल ने लिखा है कि दूरदर्शन नरसंहार भड़काने में जुटा था. पूरे समय इंदिरा गांधी के शव और उसके आसपास ख़ून का बदला ख़ून से लेंगे के लग रहे नारों को प्रसारित किया जा रहा था. अख़बार भी सही ख़बर देने के अपने धर्म को भूल चुके थे. हो सकता है कि उनकी आपत्ति जायज़ हो, लेकिन उस वक़्त जनसत्ता और इंडियन एक्सप्रेस में आलोक तोमर और अश्विन सरीन जैसे पत्रकारों ने जान की बाज़ी लगाकर रिपोर्टिंग की थी. फोटोग्राफर संदीप शंकर की दंगाइयों ने जमकर पिटाई की थी. जरनैल को मीडिया पर सवाल करने के पहले उस दौर के रविवार के अंक भी देखने चाहिए. उन दिनों दिल्ली से उदयन शर्मा और उत्तर प्रदेश से संतोष भारतीय की रिपोर्ट ने देश को हिलाकर रख दिया था. चंद लोगों की लिखी रिपोर्ट पर पूरी मीडिया को कठघरे में खड़ा कर देने से जरनैल की हड़बड़ी दिखाई देती है.

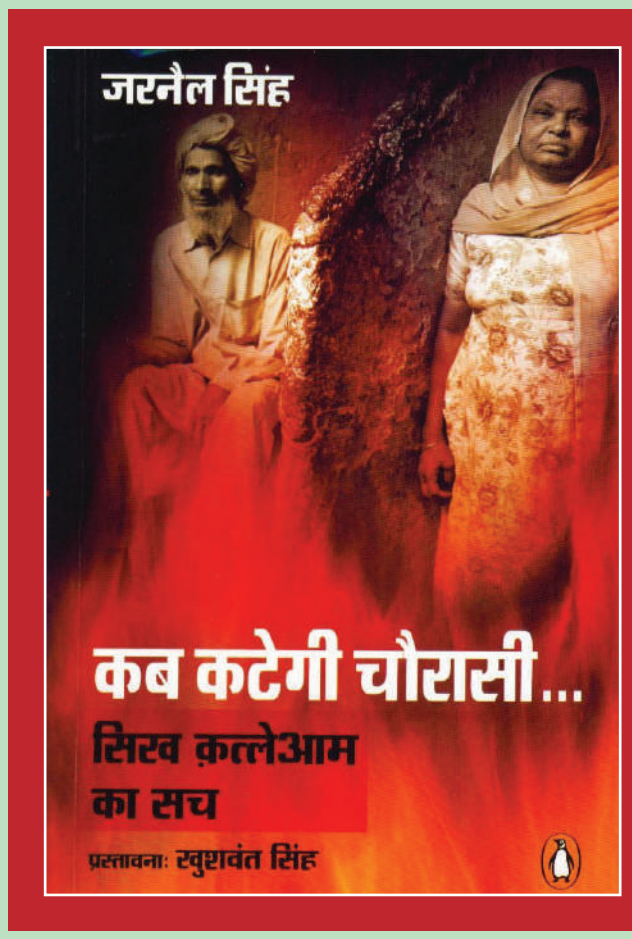

इस किताब का एक बड़ा हिस्सा उन लोगों के दर्द का है, जिन्हें इस क़त्लेआम के 25 साल बाद भी न्याय नहीं मिला. दो महीने के बच्चे को चूल्हे पर रखकर जला दिया गया, लोगों को टायर में फंसा कर आग लगा दी गई. बेटे के सामने पिता का, पत्नी के सामने पति का, बहन के सामने भाई का क़त्ल कर दिया गया. किस तरह से एक शहर से एक पूरी कौम को ख़त्म करने की कोशिश की गई, किताब के पहले हिस्से में इस दर्द को जगह मिली है. दूसरे हिस्से में न्यायकर्ता और अन्यायकर्ता की चर्चा की गई है. इस हिस्से में जरनैल ने एच के एल भगत, सज्जन कुमार और जगदीश टाइटलर की भूमिका पर लिखा है. साथ ही उस दौर में पूर्वी दिल्ली के त्रिलोकपुरी इलाक़े के एसए–चओ त्यागी के कारनामों को भी बयान किया है. जरनैल ने मौन साधे रहने पर तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह और गृहमंत्री नरसिम्हा राव पर भी उंगली उठाई है, लेकिन जरनैल की इस किताब में नया कुछ भी नहीं है. सिर्फ़ आयोग की फ़ाइलों से केस स्टडीज को निकालकर सामने रखा गया है. दरअसल इस क़त्लेआम पर इतनी हृदय विदारक घटनाएं और परिस्थितियां हैं कि पाठक उसे पढ़ते वक़्त भाषा और शैली को बिल्कुल ही भूल जाता है, लेकिन अगर चंद पल के लिए हम एक किताब के तौर पर इस पर विचार करें कि जिस तरह से जल्दबाजी में लोगों के दर्द को बयां किया गया है, वह पर्याप्त शोध की ज़रूरत को महसूस कराता है. इस विषय पर ही 2007 के अक्टूबर में रोली बुक्स से वरिष्ठ पत्रकार मनोज मिट्टा और वकील एच एस फुल्का की किताब *ह्वेन अ ट्री शूक डेल्ही* आई थी, जो कि इस विषय पर लिखी गई एक बेहतरीन किताब है. मनोज मिट्टा की किताब का फ़लक बहुत बड़ा है और उसमें जो दर्द है, उसमें जो घटनाएं और परिस्थितियां बयान की गई हैं, वे सचमुच दिल दहला देती हैं. शाहदरा स्टेशन पर एक नवविवाहिता के पति को मार देने वाली घटना दो साल पहले पढ़ी थी, लेकिन वह अब भी मेरे जेहन में है. मिट्टा और फुल्का की उक्त किताब में न केवल क़त्लेआम के शिकार परिवार के दुखों की दास्तां है, बल्कि न्याय के लिए उनके संघर्ष को भी प्रमुखता से सामने रखकर पूरी व्यवस्था पर चोट की गई है. मुझे नहीं मालूम कि जरनैल ने वह किताब देखी थी या नहीं, लेकिन इतना ज़रूर तय है कि जरनैल ने बेहद हड़बड़ी में यह किताब लिखी है. काम पूरा करने की जल्दबाजी पूरी किताब में हर जगह दिखाई देती है. हो सकता है कि क़त्लेआम के पच्चीस साल पूरे होने पर किताब को बाज़ार में लाने की जल्दबाजी हो या फिर कोई और भी वजह हो सकती है. सच्चाई क्या है, इस रहस्य पर से पर्दा तो सिर्फ़ लेखक ही उठा सकता है.

(लेखक आईबीएन 7 से जुड़े हैं)

feedback@chauthiduniya.com

हिंदू संस्कृति कई संस्कृतियों का मिश्रण है

हिंदू धर्म पर कुछ लिखने से पहले आइए इस पर विचार करते हैं कि आखिर मनुष्य जाति का उद्भव कहां हुआ होगा? वाकई यह सवाल काफी रोचक है, लेकिन अभी तक इसका सही जवाब ढूंढा नहीं जा सका है. विद्वानों ने इसकी कई तरह से व्याख्या की है. बाइबिल में इसका जवाब तल–ाशने वाले सीरिया को मानव का उत्पत्ति स्थल मानते हैं. इस बारे में अलग–अलग तरीके से अटकलें लगाई जाती रही हैं. दुनिया के कई भूभागों के बारे में लोग इस तरह की अटकलें लगा चुके हैं. कई लोग पश्चिम एशिया को मानव का उत्पत्ति स्थल मानते हैं तो कई मध्य एशिया, बर्मा, अफ्रीका और उत्तरी ध्रुव के पास के प्रांतों के बारे में समझते रहे हैं कि आदमी सबसे पहले यहीं उत्पन्न हुआ होगा. लोग मनुष्यों के जीवाश्म अवशेषों की प्राचीनता को भी अपनी धारणा का आधार बनाते हैं. पीकिंग मैन जीवाश्म को 30,000 वर्ष पुराना बताया गया है. कई दूसरे आधार भी हैं. जैसे कि मनुष्य मूलत: बे–रोएंदार प्राणी है, इसलिए उसकी उत्पत्ति किसी गर्म देश में होने का अनुमान लगाया जाता है. इस सिद्धांत को मानने वाले अफ्रीका, भारत या उससे भी दक्षिण पूर्व के भागों को मानव की उत्पत्ति का केंद्र मानते हैं.

एक दलील यह भी दी जाती है कि भारत का वह भाग जो अभी समुद्र में समाया हुआ है, लेकिन पहले वह थल का हिस्सा था, हो न हो मनुष्य सबसे पहले वहीं पैदा हुआ होगा. जो लोग अफ्रीका को मानव की उत्पत्ति का केंद्र मानते हैं, वे वहां बहुतायत में पाए जाने वाले चिपांजी, गोरिल्ला, गिब्बन और ओरांगउटान आदि को इसका आधार मानते हैं. ये सभी जीव मानव विकास की महत्वपूर्ण कड़ी स्वीकार किए जाते हैं. अफ्रीका से उत्खनन में प्रचुर मात्रा में हड्डियां निकलने से भी लोग इस बात की अटकलें लगाते हैं. जहां तक भारतीय विद्वानों की बात है तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ग्वालियर अधिवेशन में डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी ने आदि मनुष्य के पंजाब और शिवालिक की ऊंची भूमि पर विकसित होने का प्रमाण मिलने की बात कही थी. सिंधु घाटी में कृषि सभ्यता का विकास और सिंधु के पठार में भारत की प्राचीनतम सभ्यता के अवशेष मिलने से इस बात की पुष्टि होती है, इसलिए डॉ. मुखर्जी का अनुमान सत्य के ज्यादा करीब मालूम पड़ता है.

अगर यह मान भी लें कि मनुष्य की उत्पत्ति भारत में हुई होगी तो उसका उद्भव कहां हुआ होगा, उत्तर में या दक्षिण में? युक्तिसंगत अनुमान यह है कि उसकी उत्पत्ति उत्तर में नहीं, दक्षिण में हुई होगी. भारत की सबसे पुरानी धरती विंध्य से फैलती हुई दक्षिण की ओर चली गई है. आज से लगभग तीन लाख वर्ष पूर्व दक्षिण भारत में मनुष्य रहा होगा, इस अनुमान को विद्वान उचित आधार के साथ मानते हैं. 1935 में बड़ोदा राज्य के वादनगर स्थान पर लघु मानव का एक तीस इंच लंबा कंकाल मिला था, जिसे वैज्ञानिक आदि नीग्रो का कंकाल समझते हैं. चार्ल्स डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत के बाद विद्वान मनुष्य का पूर्वज बंदर जाति के ही किसी जीव के होने की बात कहते हैं. जो लोग विकासवाद के सिद्धांत को पूर्णत: मान चुके हैं, वे कपि, गिब्बन, ओरांगउटान और चिपांजी की चार प्रजातियों से मनुष्य का विकास हुआ मानते हैं. वहीं कुछ लोगों का विचार है कि आदमी जिस जीव से बढ़कर आदमी हुआ है, वह बंदर नहीं, बल्कि बंदरों के समान ही कोई अन्य स्थलचारी जीव था. एक दूसरा अनुमान यह भी कि आदमी

आरंभ से ही आदमी के स्वरूप में है और उसकी पैदाइश एक साथ अनेक जगहों पर हुई. इस अनिश्चय के बीच ज्यादातर विद्वान यह मानते हैं कि हमारे पूर्वज अन्य देशों से यहां आए और आपस में मिश्रित होकर उन्होंने इस देश में वर्तमान जनसमूह की रचना की. भारत अनंत काल से विभिन्न जातियों के लोगों के समागम का केंद्र रहा है. ईसाइयों और मुसलमानों को छोड़कर यहां ग्यारह जातियों के आने और रच–बस जाने के प्रमाण हैं. उन्होंने इस देश को अपना देश मान लिया और यहां की संस्कृति और समाज में शामिल होकर आर्य अथवा हिंदू हो गए. नीग्रो, ऑस्ट्रिक, द्रविड़, आर्य, यूनानी, यूची, शक, आभीर, हूण, मंगोल और मुस्लिम आक्रमण के पूर्व आने वाले तुर्क आदि जातियों के लोग कई झुंडों में इस देश में आए और हिंदू समाज में दाख़िल होकर सब के सब उसके अंग हो गए. असल में हम जिसे हिंदू संस्कृति कहते हैं, वह किसी एक जाति की देन नहीं है, बल्कि इन सभी जातियों की संस्कृतियों के सम्मिश्रण का परिणाम है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

डेढ़ अरब रुपये से ज़्यादा के स्थायी विकास कार्य

डॉ.कमलकांत बुधकर

उत्तराखंड के गठन के बाद कुंभ और अर्द्धकुंभ जैसे विराट जनपर्वों को लेकर एक जो महत्वपूर्ण परिवर्तन सामने आया, वे हैं स्थायी निर्माण कार्य. इससे पहले उक्त विराट मेले हरिद्वार में करोड़ों रुपये ख़र्च करने के सशक्त बहाने बनकर आते थे. रुपये तो अब भी पहले की तुलना में कई गुना अधिक ख़र्च हो रहे हैं, पर अब ज़ोर स्थायी निर्माण कार्यों पर अधिक है. यह परिवर्तन उत्तराखंड बनने के बाद आए पहले अर्द्धकुंभ से हुआ. तब पंडित नारायण दत्त तिवारी राज्य के मुख्यमंत्री थे और उन्होंने ही इन महामेलों के निमित्त स्थायी निर्माण कार्यों की पहल की.

2004 के अर्द्धकुंभ की याद लोग स्थायी कुंभ मेला कार्यालय यानी केंद्रीय नियंत्रण भवन, सीसीआर और एक बड़े मेला अस्पताल के निर्माण वर्ष के रूप में करते हैं. पूर्व के मेलों में सारी व्यवस्थाएं प्राय: ठेकेदारों पर ही निर्भर रहा करती थीं और मेला बजट का बहुत बड़ा हिस्सा अस्थायी टेंट–शामियानों, छोलदारियों, टीन और बांस–बल्लियों पर ही ख़र्च हो जाता था. ठेकेदारों के चहेते अधिकारियों की पौ बारह रहती थी. रहती अब भी है, पर अब स्थायी निर्माणों के चलते थोड़ा अंकुश लगा है. यह अलग बात है कि विभिन्न स्तरों पर रिश्वत और दलाली की लाली तब भी मेले को सुर्खरू करती थी और अब भी करती है.

2010 के महाकुंभ की चर्चा करें तो इस मेले के बहाने भी अनेक स्थायी कार्य किए जा रहे हैं. कुछ पूरे हो चुके हैं और कुछ शीघ्र ही पूरे होने वाले हैं. इस संदर्भ में चौथी दुनिया की ओर से जब कुंभ के प्रमुख मेलाधिकारी आनंद वर्द्धन से जानकारी ली गई तो उन्होंने बताया कि महाकुंभ के लिए अब तक चार अरब चालीस करोड़ रुपये के विभिन्न विभागीय निर्माण प्रस्तावों को स्वीकृति दी जा चुकी है. तीन अरब पच्चीस करोड़ रुपये विभागों को दिए जा चुके हैं, जबकि 31 अक्टूबर 2010 तक दो अरब बीस करोड़ रुपये ख़र्च कर दिए गए हैं.

मेलाधिकारी ने मुख्यमंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक द्वारा 8 नवंबर को दिए गए वक्तव्य को दो–हराते हुए 1998, 2004 एवं 2010 के महाकुंभों की तुलना प्रस्तुत की. उन्होंने बताया कि 1998 के कुंभ के लिए 31 अक्टूबर 1997 तक मात्र 55 करोड़ रुपये की धनराशि अवमुक्त की गई थी, जबकि काम केवल 34 करोड़ रुपये के ही हो पाए थे. इसी तरह 2004 में इसी अवधि तक एक अरब 18 करोड़ रुपये स्वीकृत करके उनमें से 81 करोड़ रुपये ख़र्च कर दिए गए थे.

यहां मेला रिकॉर्ड्स के इन आंकड़ों को देखना भी इस तुलना के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करता है कि 1998 में कुल कुंभ मेला बजट निन्यानबे करोड़, सत्ताइस लाख 20 हज़ार रुपये और 2004 में अर्द्धकुंभ मेला बजट एक अरब, साठ करोड़ चौहत्तर लाख पचास हज़ार रुपये था. इस लिहाज़ से तुलना करके तो किसी बहुत बड़ी उपलब्धि का श्रेय मेलाधिकारी आनंद वर्द्धन नहीं ले सकते हैं, पर ज़्यादा रुपयों से ज़्यादा काम कराने का श्रेय अलबत्ता उनके सिर जाता है. इस बार के कार्यों की विशेषता यह है कि अधिकांश कार्य 2004 के कार्यों की तरह नेत्राकर्षक, आई–कैचिंग और एकदम आंखों में आने वाले न होकर यत्र–तत्र बिखरे हुए हैं. इसलिए इस बार के मेला कार्यों का संदेश अधिक असरकारी नहीं हो पा रहा है.

मेलाधिकारी के अनुसार, इस बार के महाकुंभ के स्थायी कार्यों का असर भविष्य के कांवड़ मेलों, सोमवती अमावस्या और बैसाखी जैसे बड़े स्नान पर्वों पर दिखाई पड़ेगा, क्योंकि मेलों के यातायात की सुविधा के लिए नए मार्गों और नए पुलों पर बड़ी राशि ख़र्च की जा रही है. पहला बड़ा मार्ग दिल्ली से हरिद्वार आने वाले यातायात के लिए लक्सर पुरकाज़ी के बीच तैयार हो रहा है. इस मार्ग को तैयार करने के दावे 1998 में तत्कालीन मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने भी किए थे. वह पत्रकारों को भी इस अधबने मार्ग पर ले गए थे. पिछले बारह वर्षों से यह मार्ग अधबना पड़ा था. लेकिन अब इसे तैयार किया जा रहा है.

इस मार्ग पर पड़ने वाली एक रेलवे क्रॉसिंग पर मेला बजट से ओवर ब्रिज का निर्माण किया जा रहा है. इस कार्य में छब्बीस करोड़ सत्रह लाख रुपये ख़र्च होंगे. आनंद वर्द्धन ने बताया कि दूसरा बड़ा कार्य बारह करोड़ ग्यारह लाख रुपये की लागत से धनौरी में एक स्थायी पुल का निर्माण है. इससे भगवानपुर, इमलीखेड़ा, धनौरी और सिडकुल को जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है. पंजाब और हरियाणा से आने वाले लोगों को इससे लाभ होगा. तीसरा बड़ा काम हरिद्वार के बंद पड़े हिल बाईपास मार्ग को सुधार कर चालू करने का है. इसे मोतीचूर रेलवे स्टेशन के पीछे से ले जाकर दूधाधारी तिराहे पर हरिद्वार–देहरादून राजमार्ग से मिलाया जाना है. .

बरसों से बंद पड़े इस मौजूदा पहाड़ी मार्ग को करीब साढ़े तीन करोड़ रुपये की लागत से सुधार तो दिया गया है, पर मेलाधिकारी का कहना है कि विस्तारित मार्ग का इस्तेमाल शायद ही मेले में हो सके. खड़खड़ी से मोतीचूर के जंगल मार्ग के लिए वन विभाग की औपचारिकताएं पूरी होकर सर्वोच्च न्यायालय की अनुमति तो मिल चुकी है, पर अब भी कुछ तकनीकी कमियों के चलते यह विस्तारित मार्ग मेले तक न तो बन पाएगा और न ही इसका कोई उपयोग किया जा सकेगा. मज़े की बात यह है कि सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों के चलते मौजूदा हिल बाईपास मार्ग का उपयोग भी केवल अर्द्धकुंभ, कुंभ और सोमवती अमावस्या जैसे चंद मेलों के दिनों में ही सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच किया जा सकेगा. इस मार्ग के सुधार और निर्माण कार्य हेतु करीब 22 करोड़ रुपये स्वीकृत किए गए हैं.

कुंभ कार्यों के अंतर्गत स्नानार्थियों की सुविधा के लिए पूरे मेला क्षेत्र में क़रीब 5 किलोमीटर लंबे स्थायी स्नानघाट 74 करोड़ 81 लाख रुपयों की लागत से बनाए गए हैं. इनके अलावा मायापुर डामकोठी और गुरुकुल सिंहद्वार के पुराने ब्रिटिशकालीन पुलों के पास दो नए पुलों का निर्माण, पंतद्वीप पार्किंग के लिए मुख्य राजमार्ग के नीचे और सर्वानंद घाट के निकट एक–एक अंडरपास, शंकराचार्य चौराहे और आरटीओ तिराहे पर एक–एक फुटओवर सेतु, मेला अस्पताल में आवासीय भवनों का निर्माण, सुभाषघाट पर कोटा स्टोन का फर्श, हरिद्वार बस अड्डे का नवीनीकरण तथा हरिलोक कालोनी से ट्रांसपोर्ट नगर तक सराय माइनर के ऊपर से सड़क निर्माण आदि कार्य भी स्थायी प्रकृति के हो रहे हैं.

इन सभी स्थायी बड़े–छोटे कामों पर क़रीब 153 करोड़, 19 लाख 38 हज़ार रुपये व्यय हो रहे हैं. इसके अलावा दक्षद्वीप से नजीबाबाद को जोड़ने वाले तीन अस्थायी सेतुओं, कांगड़ाघाट को पंतद्वीप से जोड़ने वाले दो सेतुओं, हरिद्वार डैम एस्केप चैनल और अविच्छिन्न गंगा धारा पर दो अस्थायी सेतुओं पर नौ करोड़ दस लाख इक्यानबे हज़ार रुपये ख़र्च किए जा रहे हैं. मेलाधिकारी की मानें तो 2010 के महाकुंभ में नए कामों पर कुल 162 करोड़, 60 लाख 20 हज़ार रुपये ख़र्च किए जा रहे हैं. बिंदुवार देखें तो कुंभ के कामों में 19 किलोमीटर नई सड़कों के निर्माण के अलावा मेला क्षेत्र की 37 किलोमीटर मुख्य और शहर के भीतर की 16 किलोमीटर सड़कों का सुधार एवं पुनरुद्धार, छह नए पुलों एवं एक नए ओवरब्रिज का निर्माण, 33/11 केवीए के तीन नए विद्युत उपगृहों के निर्माण के अलावा चार मौजूदा विद्युत उपगृहों की क्षमता में वृद्धि, 11/0.4 केवीए के 31 नए ट्रांसफॉर्मरों की स्थापना, 11 केवीए की 30.69 किलोमीटर लाइन के अलावा 4 किलोमीटर एलटी लाइन का निर्माण तथा शहर के मुख्य मार्गों पर नई पथ प्रकाश व्यवस्था आदि प्रमुख हैं.

कुंभ यात्रियों की सुविधा के लिए की जा रही पेयजल व्यवस्था के अंतर्गत बारह उच्च जलाशयों, छह नए अंत:स्रोत कूपों एवं छह नलकूपों की स्थापना के अलावा 40 किलोमीटर पाइप लाइन बिछाई गई है. गंगा प्रदूषण नियंत्रण इकाई द्वारा शहर में 33 किलोमीटर सीवर लाइन बिछाने के अलावा 2 एसटीपी का निर्माण और 8 सीवर सेक्शन एवं 2 सीवर क्लीनिंग मशीनों का क्रय किया जाना भी तय है.

मेलाधिकारी ने बताया कि गंगा के मध्य स्थित टापुओं में इस बार पहले की तुलना में अधिक भूमि साधु–संतों, महामंडलेश्वरों के शिविरों और वाहन पार्किंग के लिए समतल व साफ़ की जा रही है. भूमि आवंटन का कार्य शुरू हो चुका है और काम तेज़ी से पूरे किए जा रहे हैं. आला अधिकारी आश्वस्त हैं कि 2010 का महाकुंभ मेला शानदार होगा और सभी तीर्थयात्री सुविधापूर्वक स्नान करके खुशी–खुशी अपने घर लौटेंगे.

kk@budhkar.in

माइक्रोसॉफ्ट रिसर्च इन कैम्ब्रिज, इंग्लैंड के शोध के मुताबिक़ इस कैमरे की सेंसकैम डिवाइस से अल्जाइमर और ऐम्नीशिया के मरीजों को काफ़ी मदद मिलती है.

Google

गूगल को रूपर्ट मर्डोक की धमकी

रूपर्ट मर्डोक, जो वाल स्ट्रीट जरनल और द न्यूयॉर्क पोस्ट जैसे मीडिया हाउस के मालिक हैं तथा जिन्हें विश्व में मीडिया किंग के नाम से जाना जाता है, ने कंटेंट चोरी के मामले में गूगल को धमकी दी है. उन्होंने कहा है कि वह जल्द ही गूगल वेबसाइट की सूची से अपनी वेबसाइट को वापस खींच लेंगे. ग़ौरतलब है कि कंटेंट को लेकर पहली बार दोनों आमने-सामने आए हैं.

ऑस्ट्रेलिया के स्काई न्यूज़ को दिए गए इंटरव्यू में उन्होंने गूगल, माइक्रोसॉफ्ट और कई दूसरी कंपनियों पर कंटेंट चोरी का आरोप लगाया है. जब उनसे पूछा गया कि वह अपनी वेबसाइट को गूगल सर्च से वापस क्यों नहीं खींच लेते हैं, तो उन्होंने कहा कि हम लोग कुछ ऐसा ही सोच रहे हैं, लेकिन अब हम उनसे इसके बदले कुछ चार्ज करना शुरू कर रहे हैं. अब तक गूगल एवं अन्य कंपनियां कंटेंट का विज्ञापन देकर पैसे कमा रही थीं, लेकिन अब मर्डोक और कई अन्य न्यूज़ कारपोरेशन के एग्जिक्यूटिव्स ने कहा कि अब वे रीडर्स और व्यूअर्स से चार्ज करेंगे. जब उनसे पूछा गया कि फ्री कंटेंट के बदले वह रीडर्स से पैसा क्यों लेंगे? तो उनका जवाब था कि यह फ्री नहीं होना चाहिए था. उन्होंने कहा कि इस मामले में हम लोग अब तक सो रहे थे, लेकिन सच्चाई यह है कि पूरे विश्व में विज्ञापन की कमी है. लिहाजा हर वेबसाइट को फ़ायदा नहीं हो सकता है. फिर भी हमारी वेबसाइट पर बहुत कम लोग आते हैं, लेकिन जो भी आते हैं, वे इसके बदले भुगतान करते हैं.

इस संदर्भ में गूगल ने मर्डोक की टिप्पणी पर टेलीग्राफ को दी गई अपनी प्रतिक्रिया में कहा कि मीडिया कंपनियां इसके लिए आभारी हैं, क्योंकि उन्हें उनके कंटेंट की ज़रूरत है. गूगल ने कहा कि बहुत कम लोग इस विकल्प को चुनते हैं कि उनके तथ्यों को गूगल न्यूज़ और वेब सर्च में शामिल न किया जाए. अगर वे हमें ऐसा करने के लिए कहते हैं तो हम उनके कंटेंट को गूगल न्यूज़ में शामिल नहीं करेंगे. गूगल ने कहा कि कंप्यूटर कोड के लिए सिर्फ़ दो पंक्तियां ली जाती हैं, जिसे रॉबोट. टीएक्सटी फ़ाइल कहा जाता है. इसे प्राय: सभी वेबसाइट्स उपयोग करती हैं, ताकि सर्च करने वाले को यह बताया जा सके कि उक्त फ़ाइल कहां है और कहां नहीं. अगर ऐसा मर्डोक को मंजूर नहीं है तो वह अपना हाथ पीछे क्यों नहीं खींच लेते?

हालांकि, ऐसा करना रूपर्ट मर्डोक के लिए जुआ खेलने के समान होगा और इससे वह बुरी तरह प्रभावित भी हो सकते हैं. अगर एक बार मर्डोक गूगल से अपनी साइट वापस ले लेते हैं तो इंटरनेट से उन्हें होने वाली आय लगभग ख़त्म हो जाएगी. वहीं दूसरी तरफ़ भुगतान करके आलेख पढ़ना संभवत: विज्ञापन की तुलना में अधिक फ़ायदेमंद हो सकता है. इस तरह दूसरी वेबसाइट पर कॉपी करने का आरोप लगना भी बंद हो जाएगा. मर्डोक की गूगल न्यूज़ से दूर होने की इच्छा पत्रकारिता के उनके पुराने ढंग की दूरदर्शिता को व्यक्त करती है.

हालांकि इसका असर गूगल पर कहां तक पड़ेगा यह तो समय ही बताएगा, लेकिन गूगल ने जिस तरह से कहा है, उससे तो साफ़ लगता है कि इसका प्रभाव उन पर ज़्यादा पड़ेगा.

पीसी और मोबाइल के लिए एक हेडसेट

गैजेट के दीवानों के लिए कोई न कोई नया उत्पाद बाज़ार में उतरता ही रहता है. ऐसे सभी उत्पादों की पूरी जानकारी हम आप तक पहुंचाते हैं. इस बार हम आपके लिए लाए हैं, प्लेन्ट्रोनिक्स वोयेजर प्रो यूसी ब्ल्यूटुथ हेडसेट. कंपनी ने हाल में इसे अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में उतारा है. इसकी सबसे बड़ी ख़ासियत यह है कि इसे मोबाइल के अलावा कंप्यूटर के साथ भी प्रयोग किया जा सकता है. इस ब्ल्यूटूथ के ज़रिए आप मोबाइल के सारे फंक्शन्स तो ऑपरेट कर ही सकते हैं, साथ ही पीसी या लैपटॉप से इसे कनेक्ट करके आप दोस्तों से बातचीत का भी लुत्फ़ उठा सकते हैं. इसे इस्तेमाल करना काफ़ी आसान है. मोबाइल में तो इसका प्रयोग अन्य ब्ल्यूटूथ हेडसेट की तरह होगा, लेकिन कंप्यूटर पर इसका इस्तेमाल कुछ अलग तरह से होगा. इसके लिए आपको पेन ड्राइव के आकार का एक यूएसबी डूंगल मिलेगा. जिसके ज़रिए आप अपने पीसी को इंटरनेट से कनेक्ट कर इसका उपयोग कर सकते हैं. इतना ही नहीं, यह आपको पीसी और मोबाइल दोनों पर एक साथ उपयोग करने की सुविधा देता है. इसके लिए आपको बस एक बटन दबाना है और यह दोनों (कंप्यूटर और मोबाइल) पर स्विच हो जाएगा. साथ ही इसमें ऑडियो आई क्यू टू सिग्नल प्रोसेसिंग और ड्यूअल माइक्रोफोन बूम जैसे फीचर्स हैं, जिनकी वजह से आपको नेटवर्क संबंधी समस्या से छुटकारा मिलेगा और साथ ही आवाज़ भी स्पष्ट सुनाई देगी. इसकी विशेष विंड स्मार्ट टेक्नोलॉजी बाहरी शोर को भी नियंत्रित करती है. हैं न कमाल के फीचर्स! वैसे आपको इसके लिए थोड़ा इंतज़ार करना पड़ेगा. अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में इसकी क़ीमत 199.95 डॉलर है.

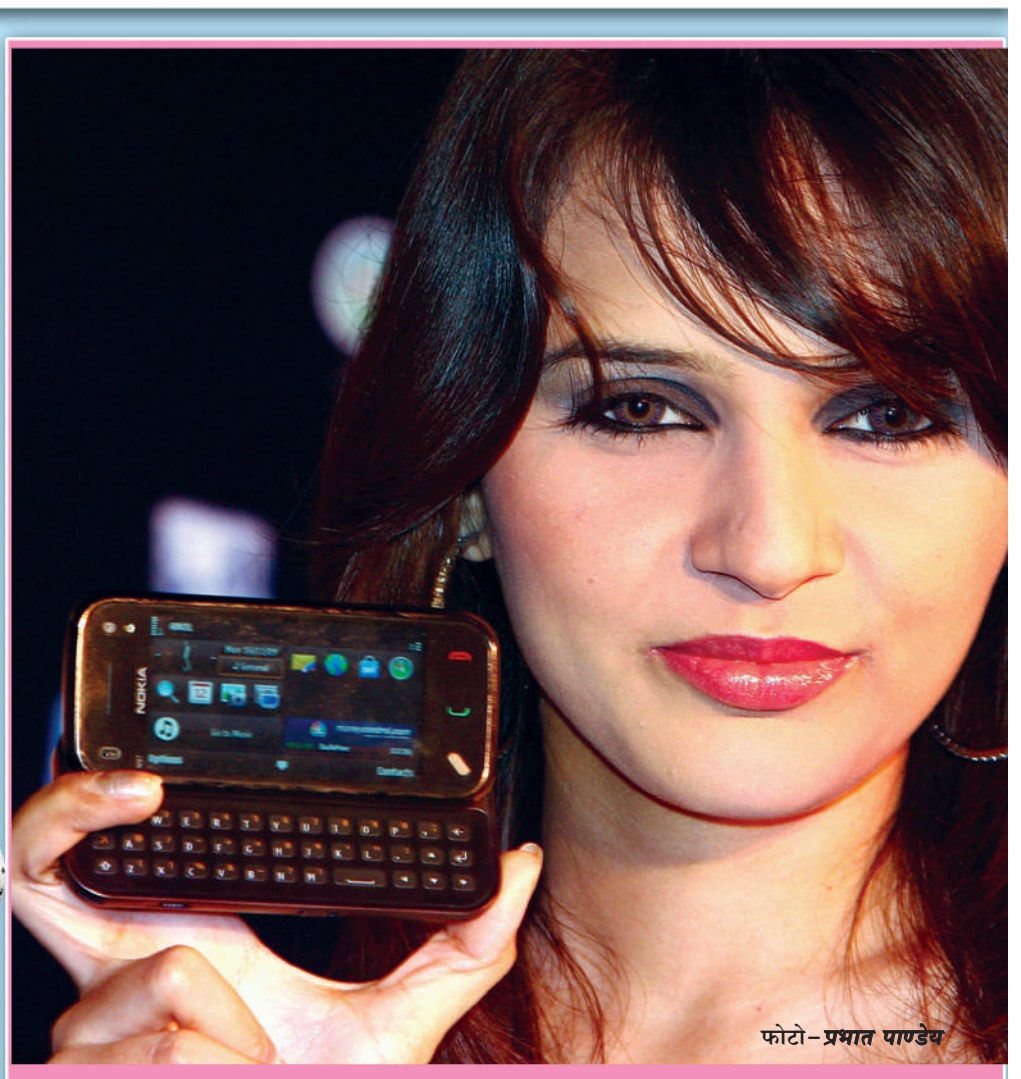

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

नोकिया एन 97 मिनी को पेश करती मॉडल : नोकिया ने एन 97 के छोटे भाई, एन 97 मिनी भारतीय को बाज़ार में उतार दिया है. एन 97 की तुलना में इसका स्क्रीन छोटा है, लेकिन फीचर्स और अन्य मामले में यह बिल्कुल नोकिया एन 97 की तरह लगता है. एन 97 में नेवी पैड की-बोर्ड पर नहीं है. अगर आप इस फोन को ख़रीदना चाहते हैं तो इसके लिए आपको 30,939 रुपए चुकाने पड़ेंगे.

सेंसकैम से याददाश्त वापस आएगी

आपको फ़िल्म गजनी तो याद होगी? अरे वही गजनी, जिसमें आमिर ख़ान भूलने की बीमारी की वजह से एक कैमरा अपने साथ हमेशा रखते थे. इसके ज़रिए ही वह अपनी याददाश्त को अपडेट करते थे. लेकिन, अब वास्तव में माइक्रोसॉफ्ट रिसर्च इन कैम्ब्रिज, इंग्लैड ने एक ऐसा कैमरा ईजाद किया है, जिसकी मदद से अल्जाइमर और एम्नीशिया के मरीजों को काफ़ी राहत मिलेगी.

यह कैमरा ऑटोमेटिकली समय अंतराल पर पूरे दिन फोटो खींचता रहेगा. इसकी सेंसकैम डिवाइस एक मिनट में दो बार लो-रिजोल्यूशन की इमेज कैप्चर करेगी. शोधकर्ताओं को यक़ीन है कि इससे अल्जाइमर और एम्नीशिया के मरीजों को पुरानी घटनाएं याद करने में काफ़ी मदद मिलेगी. ऐडनब्रूक अस्पताल के न्यूरोसाइकोलॉजिस्ट डॉ. एम्मा बेरी ने भी माइक्रोसॉफ्ट की इस रिसर्च पर काम किया है और वह भी इस तथ्य से सहमत हैं कि इसका सेंसकैम मरीजों की याददाश्त वापस लाने में काफ़ी मददगार है. उन्होंने एक महिला पर इसका प्रयोग भी किया, जो अल्जाइमर की मरीज थी. उनके मुताबिक़, तस्वीरों की मदद से वह अपनी कई पुरानी बातों को फिर से बताने में सफल हो गई. तो है न गज़ब का गैजेट! इस सेंसकैम की मेमोरी एक जीबी है, जिसकी मदद से आप लगभग 30,000 तस्वीरों को स्टोर कर सकते हैं.

इसे रोज़ाना चार्ज करने की ज़रूरत है. अभी तक इस तकनीक को फ़िल्मों में इस्तेमाल किया गया, पर अब माइक्रोसॉफ्ट के शोधकर्ता इसे बाज़ार में उतारने की कोशिश में लगे हुए हैं. उनके मुताबिक़, इसके प्रयोग से न सिर्फ़ इस बीमारी से ग्रसित लोगों को मदद मिलेगी, बल्कि इस छोटे से उपकरण का इस्तेमाल एक आम कैमरे के शौक़ीन भी कर सकते हैं. बतौर क़ीमत इसके लिए आपको लगभग 40 हज़ार रुपये चुकाने होंगे.

इसे कहते हैं एक पंथ दो काज. यह डिवाइस देखने में जितना छोटा लगता है, लेकिन इसका काम उतना ही बड़ा है. वैसे इस छोटे से उपकरण का उपयोग इलाज के दौरान तो होता ही है लेकिन इसका उपयोग जासूसी करने वाले भी कर सकते हैं.

सिर्फ़ तीन हज़ार रुपये में डेस्कटॉप

बाज़ार में कई तरह के डेस्कटॉप मौजूद हैं, जिनकी क़ीमतें भी अलग-अलग हैं. हालांकि फीचर्स के मामले में कोई आगे है तो कोई पीछे. वैसे फीचर्स क़ीमत पर निर्भर करते हैं, लेकिन हर कोई ऐसे डेस्कटॉप ख़रीदने में सक्षम नहीं होता. इसी को ध्यान में रखकर नीवियो ने सबसे कम क़ीमत पर डेस्कटॉप लांच करने की घोषणा की है. यह उन लोगों के लिए फ़ायदेमंद होगा, जो डेस्कटॉप तो लेना चाहते हैं, मगर उसका दाम सुनकर मायूस हो जाते हैं. लेकिन, अब उन्हें मायूस होने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि महीने के अंत तक यह डेस्कटॉप बाज़ार में होगा.

सबसे कम क़ीमत पर डेस्कटॉप लांच करने के लिए नीवियो ने टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर कंपनी भारती एयरटेल से हाथ मिलाया है. इस नए डेस्कटॉप की क़ीमत महज़ तीन हज़ार रुपये होगी. नीवियो के प्रेसिडेंट एवं सीईओ सचिन दुग्गल ने कहा कि बाज़ार में यह डेस्कटॉप इस महीने के अंत तक उपलब्ध हो सकेगा. हालांकि इसके बारे में कंपनी ने अभी कुछ भी नहीं बताया है.

इससे पहले भी नीवियो के ऑन लाइन पीसी लांचिंग में एयरटेल और माइक्रोसॉफ्ट के साथ भागीदारी हो चुकी है. इसके साथ ही कंपनी ने एक और डिवाइस लांच किया है, जिसे नीवियो कैंपेनियन नाम दिया गया है. यह एक छोटा सा सेट टॉप बॉक्स है, जो डेस्क टॉप की तरह काम करता है. इसकी क़ीमत 4999 रुपये है. यह तो समय ही बताएगा कि महज़ तीन हज़ार रुपये वाला यह डेस्कटॉप यूजर्स के पैमाने पर कहां तक खरा उतरता है, लेकिन इससे एक बात साफ़ है कि कंप्यूटर अब किसी भी आदमी की पहुंच से दूर नहीं रहेगा. मतलब यह कि कंप्यूटर लेने वालों की चाहत अब पूरी होगी. वह भी सस्ते दामों पर. तो इंतज़ार कीजिए महीने के आख़िर तक.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

विज्ञापन हेतु संपर्क करें : 9811205225 email : advt@chauthiduniya.com

सचिन वाक़ई में एक महान क्रिकेटर हैं, लेकिन हमें यह बात भी याद रखनी चाहिए कि उनके हिस्से में कुछ कड़वी यादें भी हैं, जो कई सवाल खड़े करती हैं.

पटरी से उतरी हॉकी की गाड़ी

विवाद भारतीय हॉकी का पीछा छोड़ने का नाम नहीं ले रहे हैं. हॉकी इंडिया के बाद विवादों में पड़ने की बारी अब हॉकी टीम की है. इसकी दुर्दशा दिन ब दिन बढ़ती ही जा रही है और इसके सुधरने की कोई उम्मीद भी नज़र नहीं आ रही है. पिछले दिनों हॉकी इंडिया के महासचिव असलम शेर खां ने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया. यह विवाद अभी ख़त्म भी नहीं हुआ कि टीम के सामने एक दूसरी आफ़त आन पड़ी है. वह यह कि भारतीय हॉकी टीम के कोच ब्रासा और खिलाड़ियों के बीच मतभेद की बात सामने आई है. दरअसल भारतीय हॉकी खिलाड़ी अपने कोच के रवैये से संतुष्ट नहीं हैं और यह विवाद भी उस समय तूल पकड़ रहा है, जब हॉकी विश्वकप प्रतियोगिता शुरू होने में बमुश्किल तीन महीने ही बचे हैं. कोच और खिलाड़ियों के बीच तनातनी ने सारी तैयारियों की पोल खोल दी है. भारतीय हॉकी की दुर्गति की एक वजह यह भी रही है कि हाल के वर्षों में जिसे भी कोच बनाया गया, उसके साथ या तो खिलाड़ियों का तालमेल नहीं बन पाया या फिर शीर्ष अधिकारियों के घालमेल ने बेहतरीन कोच को टिकने नहीं दिया. दरअसल अधिकारी चाहते हैं कि कोच उनके हाथों की कठपुतली बना रहे. ऐसे में खिलाड़ियों का कोच से तालमेल नहीं बन पाता है और जिस कोच से खिलाड़ियों की बनती है, उसका अधिकारियों के साथ छत्तीस का आंकड़ा हो जाता है. इस आपसी खींचतान में नुक़सान न तो खिलाड़ियों का होता है और न ही अधिकारियों का, हां भारतीय हॉकी की हालत बद से बदतर ज़रूर हो रही है. चाहे बात क्रिकेट की हो या हॉकी की, भारतीय खिलाड़ी हमेशा से ही विदेशी कोच के साथ सहज महसूस नहीं करते हैं.

भारतीय हॉकी टीम के कोच ब्रासा.

खिलाड़ियों की मानें तो मौजूदा कोच ब्रासा कुछ खिलाड़ियों की खेल शैली में ही बदलाव करना चाहते हैं. वह खिलाड़ियों का मनोबल बढ़ाने की जगह उन्हें हतोत्साहित करते हैं. संदीप सिंह को कप्तानी से हटाने के बाद इस विवाद ने और भी तूल पकड़ लिया है. ब्रासा भारतीय क्रिकेट टीम के पूर्व कोच ग्रेग चैपल की राह पर चल पड़े हैं. वह चैपल के ही नक्शे कदम पर चल रहे हैं.

बात क्रिकेट की हो या हॉकी की, भारतीय खिलाड़ी हमेशा से ही विदेशी कोच के साथ सहज महसूस नहीं करते हैं. खिलाड़ियों की मानें तो मौजूदा कोच ब्रासा कुछ खिलाड़ियों की खेल शैली में ही बदलाव करना चाहते हैं.

फ़र्क़ सिर्फ़ क्रिकेट और हॉकी का है. शायद ब्रासा भी हॉकी इंडिया की खस्ता हालत का फ़ायदा उठाने में लगे हैं. उन्हें मालूम है कि हॉकी इंडिया लड़खड़ा कर भी चल पाने में अभी समर्थ नहीं है और यही अवसर है, जबकि वह तानाशाही रवैया अख्तियार कर सकते हैं तथा भारतीय हॉकी को पटरी पर ला सकते हैं. दरअसल मौजूदा कोच ब्रासा को अंतरराष्ट्रीय हॉकी संघ की सिफ़ारिश पर हॉकी इंडिया ने नियुक्त किया था, लेकिन ब्रासा की रणनीति से खिलाड़ी संतुष्ट नहीं हो पा रहे हैं. वर्ल्ड कप हॉकी प्रतियोगिता शुरू होने में महज़ तीन महीने बाकी हैं, लेकिन भारतीय टीम कोई साफ़ रणनीति नहीं बना पाई है. यह है कोच ब्रासा की कोशिश टीम को फर्श से अर्श पर ले जाने की.

टीम को एकजुट करने की अपेक्षा कोच साहब हमेशा उपकरणों के अभाव का रोना रोते रहते हैं. हालात इस कदर बिगड़ गए हैं कि कोच के रवैये की वजह से ही टीम के कुछ खिलाड़ियों और उनके बीच ठन गई है. भारत को अगले साल फरवरी में विश्वकप और अक्टूबर में कॉमनवेल्थ खेल में शिरकत करनी है. इन दोनों प्रतियोगिताओं के लिए तैयारियों का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि कोच के साथ मतभेद की वजह से कई खिलाड़ी ट्रेनिंग कैंप में भी भाग नहीं ले रहे हैं. प्रबोध टिर्की, दिलीप टिर्की, इग्नेश टिर्की, हरि प्रसाद और रवि पाल जैसे धुरंधर खिलाड़ी घरेलू वजह बताकर कैंप से दूर रहते हैं.

अब देखना यह है कि भारतीय हॉकी कब तक पटरी पर आती है और आती भी है तो कितनी गति से दौड़ती है अथवा पटरी पर आने से पहले ही इसका पतन तो नहीं हो जाता हो. नतीजा चाहे कुछ भी निकले, लेकिन हाल के प्रयासों से यह बात बिल्कुल साफ़ है कि हॉकी की हालत में जान फूंकने की तमाम कोशिशें महज़ एक कोशिश बन कर ही रह जाती है. हॉकी इंडिया के गठन के बाद एक उम्मीद बंधी थी, पर अब यह उम्मीद भी धूमिल होने लगी है.

सचिन की सफलताओं पर सवालिया निशान

क्रिकेट में 20 साल का करियर और अब उसके बाद 30 हज़ार से भी अधिक रनों का आंकड़ा. ये सचिन की ऐसी उपलब्धियां हैं, जिसे उन्होंने हाल ही में हासिल किया है. लेकिन इन बीस सालों के दौरान सचिन ने कई कीर्तिमान ध्वस्त किए और कई नए कीर्तिमान बनाए. जब कोई खिलाड़ी किसी अंतरराष्ट्रीय खेल में 20 साल का लंबा सफ़र तय करता है तो रिकॉर्ड्स का अंबार लगेगा ही. क्रिकेट में 20 साल पूरा होने पर हर किसी ने उन्हें याद किया, लेकिन कहीं न कहीं यह क्रिकेट और ख़ासकर भारतीय क्रिकेट के साथ दोहरा रवैया जैसा लगता है. क्रिकेट में सचिन के अमूल्य योगदान पर सवाल कतई नहीं उठाया जा सकता है, लेकिन जब हम सचिन के रिकॉर्ड्स और योगदानों की बात करते हैं और उनका गुणगान करने लगते हैं. यहीं हमें ठहर कर सोचने की ज़रूरत है. कहीं हम सचिन का महिमामंडन करते समय हद की सीमा तो नहीं लांघ जाते? इसमें कोई शक़ नहीं कि सचिन के रूप में भारत ही नहीं, पूरे क्रिकेट जगत को एक बेमिसाल खिलाड़ी मिला. सचिन की तारीफ़ करते समय हम उस वक़्त अपनी हदें पार कर जाते हैं, जब सवाल सचिन की असफलताओं पर उठने लगता है.

अहम बात तो यह है कि सचिन ख़ुद इन असफलताओं से अपना पीछा नहीं छुड़ा सकते. नाकामयाबी सचिन के एक असफल कप्तान होने की, बड़े मैचों में घुटने टेक देने की, जीत के मुहाने पर ले जाकर टीम को बीच मंझधार में छोड़ देने की और फ़ाइनल मुक़ाबलों में फिसड्डी साबित होने की. ये कुछ ऐसे सवाल हैं, जो सचिन के महान होने पर हमेशा प्रश्नचिन्ह लगाएंगे. बड़े मौक़ों पर सचिन की फिसलन दो उदाहरणों से ज़ाहिर हो जाती है. ज़्यादा पीछे जाने की ज़रूरत नहीं है, याद कीजिए हैदराबाद में ऑस्ट्रेलिया के ख़िलाफ़ 350 रनों की चुनौती का पीछे करते सचिन रमेश तेंदुलकर को. यक़ीनन सचिन ने बड़े ही विस्फोटक अंदाज़ में बल्लेबाज़ी की और कंगारू गेंदबाज़ों की बखिया उधेड़ कर रख दी, लेकिन सचिन की कमज़ोरी भी यहीं सामने आती है. टीम जीत के बेहद क़रीब थी और सिर्फ़ पुछल्ले बल्लेबाज़ ही आउट होने बाक़ी थे, ऐसे में सचिन ने जो एक शॉट खेला, उस पर लोगों द्वारा सवाल उठाना लाजिमी है. हालांकि सचिन ही टीम को जीत के बेहद क़रीब लाए थे और देखा जाए तो उनके उस एक शॉट ने पासा पलट दिया. जब सचिन विश्वकप जीतने की तमन्ना ज़ाहिर करते हैं तो कहीं न कहीं उनके जेहन में 2003 विश्वकप के फ़ाइनल में निराशाजनक प्रदर्शन की कड़वी यादें ताज़ा हो जाती हैं. ये सचिन की महानता पर उठाए जाने वाले सवाल नहीं हैं, बल्कि यह उनके क्रिकेट करियर की कुछ ऐसी धुंध है, जो उनके ऊपर हमेशा छाई रहेगी.

क्रिकेट का दूसरा चेहरा

भारत में क्रिकेट को धर्म और सचिन तेंदुलकर को उसका भगवान माना जाता है. इस सच्चाई में शक़ की कोई गुंजाइश भी नहीं है. हमारे देश में क्रिकेट के अलावा दूसरे खेलों की स्थिति या कहें कि हैसियत क्या है, यह किसी से छिपी नहीं है. लेकिन, आपको यह जानकर हैरानी होगी कि यह क्रिकेट भी भारत में उपेक्षा का दंश झेल रहा है और खिलाड़ी कई कीर्तिमान बनाने के बावजूद मीडिया की निगाहों में नहीं आ पाते. ऐसा ही कुछ हाल है महिला क्रिकेट का. ज़रा सोचिए, सचिन तेंदुलकर यदि शीर्ष स्थान पर क़ाबिज हो जाएं तो उन्हें मीडिया का कितना एक्सपोज़र मिलेगा. यह बताने की शायद ज़रूरत नहीं है. पिछले दिनों अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट में बीस साल पूरा करने पर मीडिया ने जिस तरह सचिन गाथा शुरू की, उसके आगे कहने को कुछ रह भी नहीं जाता है, लेकिन क्रिकेट का ही खेल और उसे धर्म की तरह मानने वाले देश में ही पुरुष और महिला खिलाड़ियों के बीच भेदभाव देखने को मिलता है तो आश्चर्य होता है.

महेंद्र सिंह धोनी एकदिवसीय क्रिकेट में नंबर एक के पायदान पर हैं और भारतीय टीम के कप्तान भी, इस बात से तो प्राय: सभी वाक़िफ़ होंगे. लेकिन, मिताली राज कौन हैं? जी हां, चौंकिए मत. मिताली राज भारतीय महिला क्रिकेट टीम की पूर्व कप्तान एवं क्रिकेट में नंबर वन का ख़िताब हासिल करने वाली खिलाड़ी हैं. हो सकता है कि बहुत से लोगों ने यह नाम पहले कभी न सुना हो, लेकिन क्रिकेट और खेलों पर बारीक नज़र रखने वाले लोग मिताली को जानते हों. यहां सवाल यह है कि मिताली को कितने प्रतिशत भारतीय पहचानते हैं? जबकि उनकी उपलब्धि कई दिग्गज पुरुष खिलाड़ियों से कहीं अधिक बेहतर है. यदि देखा जाए तो यह भेदभाव क्रिकेट का नहीं है, बल्कि लैंगिक है. चाहे महिला क्रिकेट के लिए प्रायोजकों की बात हो या उनके प्रमोशन की, भेदभाव हर स्तर पर देखने को मिल जाएगा. इसके अलावा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिला क्रिकेट की अनदेखी भी कम ज़िम्मेदार नहीं है और सबसे बड़ी वजह है हमारा नज़रिया. दुनिया भर में मशहूर और भारत में जुनून की हद तक चाहा जाने वाला यह खेल यदि पुरुष खेलते हैं तो बेहद लोकप्रिय और महिलाएं खेलती हैं तो उनका दूर-दूर तक ज़िक्र नहीं होता. मतलब कहीं न कहीं कुछ तो गड़बड़ ज़रूर है और इस गड़बड़ी के दूर होने की बस उम्मीद ही की जा सकती है.

राष्ट्रमंडल खेलों की सुरक्षा पर सरकार का रवैया

भारत अगले साल राष्ट्र मंडल खेलों की मेजबानी के लिए पूरी तरह मुस्तैद है. राजधानी दिल्ली में होने वाले इन खेलों के लिए हर लिहाज़ से चौकसी बरती जा रही है, क्योंकि भारत आतंकियों के लिए पहले से ही एक सॉफ्ट टारगेट बना हुआ है और मुंबई व दिल्ली समेत कई बड़े शहर उनकी हिटलिस्ट में शामिल हैं.

ऐसे में सरकार सुरक्षा व्यवस्था में कोई कसर नहीं छोड़ना चाहती है. गृहमंत्री ने भी कहा है कि राष्ट्र मंडल खेलों के दौरान सुरक्षा मामले में कोई कोताही नहीं बरती जाएगी, लेकिन सबसे बड़ा रोड़ा स्वयं गृह मंत्रालय साबित हो रहा है. सरकार सुरक्षा व्यवस्था के मसले पर कितनी संजीदा है, इसे साबित करने के लिए इतना ही काफ़ी है कि राष्ट्र मंडल खेलों की सुरक्षा के लिए नियुक्त शीर्ष सुरक्षा अधिकारियों के पद ख़ाली हैं. दरअसल इस मसले पर भारत सरकार और केंद्रीय प्रशासनिक ट्रिब्यूनल के बीच ठनी हुई है, जिसकी वजह से लगभग साल भर से शीर्ष सुरक्षा अधिकारियों के पद पर किसी की भी नियुक्ति नहीं हो पाई है. राष्ट्र मंडल खेल आयोजन समिति ने सुरक्षा प्रमुख के पदों के लिए वरिष्ठ अधिकारियों आर पी शर्मा और अजय चड्ढा के नाम पिछले साल ही गृह मंत्रालय के पास भेजे थे, लेकिन अभी तक इन नामों को मंजूरी नहीं मिल सकी है. ध्यान देने वाली बात यह है कि पी चिदंबरम गृहमंत्री हैं और उन्हें सक्रिय मंत्री के तौर पर शुमार किया जाता है, लेकिन उनके रहते इस तरह का ढीला रवैया एक बड़ा सवाल खड़ा करता है.

कहीं सुरक्षा व्यवस्था चाकचौबंद करने की जगह सरकार का इरादा खिलाड़ियों को राम भरोसे छोड़ने का तो नहीं है!

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

फोटो– प्रभात पाण्डेय

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

चौथी दुनिया दिल्ली, 30 नवंबर–6 दिसंबर 2009

शाहरुख ख़ान के साथ अपने करियर की शुरुआत और ज़बरदस्त कामयाबी हासिल करने वाली अनुष्का के नक़्शे क़दम पर एक और अनुष्का चलने जा रही हैं.

हरमन अब जेनेलिया के साथ

प्रियंका चोपड़ा के साथ दो फ़िल्मों में काम करने के बाद भी हरमन बावेजा के करियर को कोई फ़ायदा नहीं हुआ, क्योंकि उनकी राशियां प्रियंका के साथ मेल नहीं खाई. इसलिए वह अब अपनी क़िस्मत चुलबुली अभिनेत्री जेनेलिया डिसूज़ा के साथ आजमाएंगे. प्रियंका के साथ उनकी फ़िल्में *वॉट्स योर राशि* और *लव स्टोरी 2050* बॉक्स ऑफिस पर कब आईं और कब चली गईं, पता ही नहीं चल पाया. ख़ैर, हरमन अब अपनी डगमगाती नैया को पार लगाने के लिए फ़िल्म *इट्स माई लाइफ* में जेनेलिया के साथ नज़र आएंगे. फ़िल्म का निर्देशन नो इंट्री और वेलकम फेम अनीज बज़्मी करेंगे. उनके मुताबिक़, जेनेलिया इस फ़िल्म में रोमांटिक भूमिका में नज़र आएंगी. यह किरदार उनके अब तक के किरदारों से बिल्कुल अलग होगा. हरमन भी एक अलग अंदाज़ में दिखाई देंगे. हरमन को जेनेलिया से इसलिए भी उम्मीदें हैं क्योंकि *जाने तू या जाने ना* की सफलता के बाद उनके सितारे बुलंदी पर हैं. दर्शकों में उनके बढ़ते क्रेज को देखते हुए हरमन का भी अंदाज़ा लगाना ग़लत नहीं है. पहले पिता हैरी बावेजा, उसके बाद प्रेमिका प्रियंका चोपड़ा का साथ तो उनके लिए कोई लकी साबित नहीं रहा, हो सकता है कि शायद जेनेलिया डिसूजा की बढ़ती लोकप्रियता से हरमन का कुछ भला हो जाए क्योंकि उनकी अभी तक कोई फ़िल्म बॉक्स ऑफिस पर चली ही नहीं हैं. आने वाली फ़िल्म की शूटिंग लगभग पूरी हो चुकी है और यह बहुत जल्द प्रदर्शित होगी. देखते हैं, हरमन की क़िस्मत का सितारा जेनेलिया के साथ कितना चमकता है.

द्रोपदी बनने की राह पर प्रियंका

प्रियंका चोपड़ा हाल में आई अपनी फ़िल्म *वॉट्स योर राशि* से तो दर्शकों का दिल नहीं जीत पाईं, लेकिन अब वह एक ऐसी नई फ़िल्म में काम कर रही हैं, जिसमें वह सात पतियों वाली एक पत्नी के रूप में नज़र आएंगी. इस फ़िल्म में दक्षिण के सुपर स्टार मोहन लाल उनके सात पतियों में से एक की भूमिका निभाने वाले हैं. बाक़ी छह पतियों का रोल कौन-कौन अभिनेता निभाएंगे, यह अभी तय नहीं हुआ है. प्रियंका इस फ़िल्म में बिल्कुल उसी अंदाज़ में दिखाई देंगी, जैसे महाभारत में द्रोपदी थीं. फिल्म का निर्देशन विशाल भारद्धाज करेंगे, जिन्होंने ओमकारा, मकड़ी और मक़बूल जैसी सफल फिल्में बनाई हैं. ग़ौरतलब है कि प्रियंका और विशाल फ़िल्म कमीने में एक साथ काम कर चुके हैं. कमीने को समीक्षकों ने भी काफ़ी सराहा था.

अनुष्का शर्मा के बाद अनुष्का मनचंदा

आप सभी अनुष्का शर्मा को अच्छी तरह जानते होंगे, जिन्होंने अपनी पहली फ़िल्म *रब ने बना दी जोड़ी* में ख़ूब धूम मचाई थी. शाहरुख ख़ान के साथ अपने करियर की शुरुआत और ज़बरदस्त कामयाबी हासिल करने वाली अनुष्का के नक़्शे क़दमों पर एक और अनुष्का चलने जा रही हैं. वह भी शाहरुख के साथ बड़े पर्दे पर पहली बार अपनी क़िस्मत आजमाने जा रही हैं और उनका पूरा नाम है अनुष्का मनचंदा. वह म्यूज़िक बैंड वीवा गर्ल्स की सदस्य के तौर पर कई एलबमों में अपनी आवाज़ भी दे चुकी हैं. वह शाहरुख ख़ान के साथ जल्द ही रिलीज़ होने वाली फिल्म *दूल्हा मिल गया* में बतौर अभिनेत्री दिखाई देंगी. इस फ़िल्म में उनके अलावा फरदीन ख़ान और सुष्मिता सेन भी हैं. अनुष्का ने इस फिल्म के तीन गीतों को अपनी आवाज़ भी दी है. हालांकि फ़िल्म में उनका किरदार काफ़ी छोटा है. अनुष्का के मुताबिक़, वह इस फ़िल्म में काम करके बहुत ख़ुश हैं. उन्हें किंग ख़ान के साथ काम करने का मौक़ा मिला है. अनुष्का अपनी हमनाम यानी अनुष्का शर्मा की तरह कामयाब हो पाएंगी या नहीं, यह तो फ़िल्म रिलीज़ होने के बाद ही पता चल सकेगा.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

सोनाली के क़दम थियेटर की ओर

अभिनेत्री सोनाली बेंद्रे आजकल छोटे पर्दे और रंगमंच में अधिक व्यस्त दिखाई दे रही हैं. इंडियन आइडल में बतौर जज नजर आ चुकीं सोनाली इन दिनों अपने नए नाटक *आपकी सोनिया* में ख़ासी व्यस्त हैं. इस नाटक में उनके साथ ज़ुल्फिकार हैदर के रोल में फ़ारुख़ शेख भी काम कर रहे हैं. दर्शकों ने सोनाली को आज तक टीवी और सिनेमा में ज़्यादा देखा है, लेकिन थियेटर उनके लिए नया नहीं है. वह प्ले तो काफ़ी समय से कर रही हैं, लेकिन चर्चा में नहीं आईं. नाटक *आपकी सोनिया* से वह काफी उत्साहित हैं. सोनाली का कहना है कि अब उन्हें फ़िल्मों में कोई दिलचस्पी नहीं है. नाटक में काम वह इसलिए भी कर रही हैं, क्योंकि इससे होने वाली कमाई को चैरिटी में लगाया जाएगा. ग़ौरतलब है कि यह प्ले मशहूर नाटक *तुम्हारी अमृता* की अगली कड़ी है. तुम्हारी अमृता जहां प्यार की कहानी थी, वहीं *आपकी सोनिया* नफ़रत की कहानी पर आधारित है. लगता है कि सोनाली थियेटर को लेकर काफ़ी सीरियस हो गई हैं.

सल्लू मियां के बुरे दिन

लगता हैं कि अपने सल्लू मियां यानी सलमान ख़ान के दिन कुछ अच्छे नहीं चल रहे हैं. हाल ही में दिल्ली के पांच सितारा होटल में एक लड़की ने उन्हें थप्पड़ मार दिया. और तो और, कैट बेबी भी उनके साथ नाइंसाफ़ी कर रही हैं. दरअसल, कैटरीना निर्माता बनने जा रही हैं. वह इन दिनों फ़िल्म निर्माण की बारीक़ियों को जान समझ रही हैं. यही नहीं, कैट सलमान ख़ान से अपने संबंध बिगड़ने के कारण अपनी पहली फ़िल्म में उनकी जगह किंग ख़ान को ले रही हैं. वैसे फ़िल्म इंडस्ट्री में सभी को पता है कि कैट और सलमान के रिश्ते अब पहले जैसे नहीं रहे. हो सकता है कि कैट अपना नाम अब सलमान से अलग रखना चाहती हों, क्योंकि काफ़ी समय से दोनों के बीच अलगाव चल रहा है. कैटरीना शाहरुख ख़ान के अलावा अक्षय कुमार के साथ भी फ़िल्म बनाना चाहती हैं, लेकिन सलमान के साथ फ़िल्म नहीं करना चाहती. क्यों? यह कैटरीना ख़ुद बता सकती हैं.

आने वाली फिल्म

रॉकेट सिंह: सेल्समैन ऑफ द ईयर

बचना ऐ हसीनों की सफलता से उत्साहित यशराज फ़िल्म्स ने एक बार फिर रणवीर कपूर को साइन किया है. फ़िल्म का नाम है *रॉकेट सिंह: सेल्समैन ऑफ द ईयर*. रणवीर इसमें रॉकेट सिंह की भूमिका निभाएंगे. इस किरदार के लिए उन्होंने पहली बार पगड़ी पहनी है. रॉकेट सिंह की ज़िंदगी के खट्टे-मीठे अनुभवों को इस फ़िल्म में दिखाया जाएगा. यह एक कॉमेडी फिल्म है. शहनाज़ पद्मसी रणवीर की नायिका हैं. गौहर ख़ान भी इस फिल्म में एक महत्वपूर्ण भूमिका में नज़र आएंगी. निर्देशन *चक दे इंडिया* फेम शिमित अमीन ने किया है. संगीत सलीम सुलेमान का है, जबकि फिल्म के लेखक हैं जयदीप साहनी. इसमें आफताब भी मेहमान भूमिका में दिखाई देंगे. फ़िल्म 11 दिसंबर को रिलीज़ होगी.

उर्मिला को अच्छी स्क्रिप्ट का इंतज़ार

बॉलीवुड में आज भी कुछ ऐसी अभिनेत्रियां हैं, जो अपनी शर्तों के अनुसार ही काम करती हैं. फिल्म रंगीला से शुरुआत करने वाली उर्मिला मांतोडकर भी उन्हीं अभिनेत्रियों में से एक हैं. पिछले कुछ समय से वह फ़िल्मों में नज़र नहीं आ रही हैं. उनके फैन्स का कहना है कि उर्मिला ने अज्ञातवास ले लिया है. असल बात तो यह है कि उर्मिला को इन दिनों एक अच्छी स्क्रिप्ट का इंतज़ार है, ताकि वह अपने करियर की डगमगाती हुई नैया को पार लगा सकें. पिछले वर्ष रिलीज़ हुई उर्मिला की सभी फ़िल्में असफल रहीं. चाहे वह हिमेश रेशमिया के साथ *क़र्ज़* हो या संजय दत्त की *ईएमआई*. इसलिए उर्मिला ने तय किया है कि अब वह सोच-समझ कर ही फ़िल्में साइन करेंगी. वह अपने करियर को काफ़ी गंभीरता से ले रही हैं. फ़िलहाल वह अपने ख़ाली वक़्त का सदुपयोग ट्रैवलिंग और शॉपिंग में कर रही हैं. कुछ समय बाद वह गोविंदा और सुनील शेट्टी के साथ *अब दिल्ली दूर नहीं*, जैकी श्राफ के साथ *नॉन स्टॉप फन* और सुनील के साथ *दिल्ली सफारी* में नज़र आएंगी. हम भी यही उम्मीद करते हैं कि उर्मिला जल्द ही अपने अज्ञातवास से बाहर आएं.

चौथी दुनिया

बिहार झारखंड

www.chauthiduniya.com

दिल्ली, 30 नवंबर–6 दिसंबर 2009

बिहार सरकार की लाचारी

मंत्री पस्त, अधिकारी मस्त

अजीत कुमार

रेणु देवी

भोला प्रसाद सिंह

सरोज सिंह

लोकतंत्र में जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों पर सरकार चलाने का दायित्व है. वे जनता के प्रति जवाबदेह हैं. बिहार में ऐसा नहीं है. नौकरशाह अपनी मर्ज़ी से फ़ैसले ले रहे हैं. इस मामले में वे विधायकों और मंत्रियों की एक नहीं सुनते. नीति निर्धारण में जब जन प्रतिनिधियों को ही शामिल नहीं किया जाएगा तो स्वाभाविक है कि विकास की गति धीमी पड़ जाएगी. राज्य सरकार को इस दिशा में सख्त क़दम उठाने चाहिए.

ललन सिंह को जब दोबारा जदयू का प्रदेश अध्यक्ष बनाया जा रहा था, तब नीतीश सरकार के कई मंत्री मंच से उन्हें बार-बार यह अहसास दिलाने की कोशिश कर रहे थे कि सूबे में लोक पर तंत्र हावी होता जा रहा है. मंत्रियों व विधायकों की बात नहीं सुनी जा रही है. अगर हालात ऐसे ही रहे तो चुनाव में फ़जीहत तय है. इस समारोह को हुए एक माह से ज़्यादा समय गुज़र गया, पर मंत्रियों के दिलों का दर्द जस का तस है. विधायकों की पीड़ा बरक़रार है.

इसी बीच पीएचइडी मंत्री अश्विनी चौबे ने यह कहकर सनसनी फैला दी कि उनकी जानकारी के बिना ही राज्य जल नीति तैयार कर दी गई. हालांकि बाद में उन्होंने कहा कि जल नीति अभी बनी नहीं है, अभी तो सिर्फ़ मसौदा तैयार हुआ है. यह तो एक बानगी है, जो इस ओर इशारा करती है कि सूबे में सरकार किस तरह चल रही है. मंत्री की बात सुनी जा रही है या फिर नौकरशाह अपनी मर्ज़ी से फ़ैसले ले रहे हैं? जन सरोकार के मुद्दों पर विधायकों की राय को तवज्जो दी जा रही है या फिर ज़िलों के हाकिम उसे अनसुना कर रहे हैं? नीतीश सरकार के चार साल पूरे हो चुके हैं. इस दौरान ऐसे कई मौक़े आए, जबकि अपने विभागीय सचिव के सामने मंत्रियों की बेचारगी साफ़ झलकी.

नंद किशोर यादव जब पथ निर्माण मंत्री थे तो विभागीय सचिव राजकुमार सिंह से उनका तालमेल नहीं बैठा. हालांकि मंत्री व सचिव बार-बार यह सफ़ाई देते रहे कि उन दोनों में काफ़ी बेहतर तालमेल है. सूत्रों की मानें तो ऐसे कई मौक़े आए, जबकि सचिव ने अपने विभागीय मंत्री की अनदेखी कर दी. बताया जाता है कि उक्त मंत्री ने मुख्यमंत्री से इस बात की शिकायत भी की, लेकिन फेरबदल में नंद किशोर यादव से पथ निर्माण की ज़िम्मेदारी वापस लेकर उन्हें स्वास्थ्य महकमे का मंत्री बना दिया गया.

अनूप मुखर्जी जब ग्रामीण विकास विभाग में थे तो मंत्री भगवान सिंह कुशवाहा की असहजता बार-बार झलक जाती थी. इसी तरह कुछ समय तक पंचायती राज मंत्री रहे हरि प्रसाद शाह और सिंचाई मंत्री रहे रामाश्रय प्रसाद सिंह को भी इस परेशानी से दो-चार होना पड़ा. तिरहुत नहर परियोजना पर अशोक कुमार सिन्हा से रामाश्रय बाबू की राय अलग थी.

नीतीश मिश्रा जब आपदा प्रबंधन मंत्री थे तो विभाग के प्रधान सचिव से उनकी मुलाक़ात ही नहीं हो पाई. मिश्रा इतने हताश हो गए कि उन्होंने प्रधान सचिव को बुलाने के लिए पीत पत्र तक जारी कर दिया. इसके बावजूद उन्हें विशेष सचिव से भेंट कर ही तसल्ली करनी पड़ी. चंद्रमोहन राय जब स्वास्थ्य मंत्री थे तो कटिहार मेडिकल कॉलेज से एक युवक को पटना लाने के मामले में तत्कालीन सचिव दीपक कुमार से उनकी काफ़ी ठनी. विधायकों एवं पूर्व विधायकों से संबंधित स्वास्थ्य योजना तो लंबे समय तक लंबित पड़ी रही. ये कुछ ऐसे मामले हैं, जो जाने-अनजाने, छिपते-छिपाते या आधे-अधूरे सामने आ गए, लेकिन राजकाज से जुड़े ऐसे सैकड़ों मामले पर्दे के पीछे हैं, जिन्हें न तो मंत्री बताना चाहते हैं और न ही उनके विभागीय सचिव.

विधायकों का दु:ख तो और भी गहरा है. ज़िले में हाकिम उनकी बात नहीं सुनते. इसलिए जनता से आंख मिलाने में उन्हें घबराहट होती है. अगर कुछ विधायकों को छोड़ दिया जाए तो बाक़ी को यह ग़म खा रहा है कि काम न करा पाए तो क्षेत्र में किस मुंह से जाएंगे. सत्ताधारी विधायकों की पीड़ा तो और भी गहरी है.

सूबे में लोक पर हावी हो रहे तंत्र को लोकतंत्र के लिए अपशकुन बताते हुए भाजपा सांसद भोला सिंह कहते हैं कि जब सत्ता शीर्ष पर बैठा नेता ही तानाशाह की तरह काम कर रहा है तो फिर लोकतंत्र और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को कौन बचाएगा? जनता की आवाज़ विधायक एवं मंत्री उठाते हैं, जब उनकी सुनी ही नहीं जा रही तो फिर लोकतंत्र कहां रहा? नीतीश सरकार तो एक कंपनी की तरह काम कर रही है. भोला सिंह सूबे में नगर विकास मंत्री रह चुके हैं, इसलिए उनके इशारे से बहुत कुछ समझा जा सकता है. लेकिन कांग्रेस के कार्यकारी अध्यक्ष समीर कुमार सिंह हाकिमों के बढ़ते प्रभाव के पीछे अलग कारण देखते हैं. उनका मानना है कि मंत्रियों को राजपाट की जानकारी नहीं है और न ही वे इस बारे में जानना चाहते हैं. अधिकतर मंत्री भ्रष्टाचार में लिप्त हैं, इसलिए अफसर उन्हें भाव नहीं देते. उन्होंने कहा कि कई बार ऐसा भी सुनने को मिलता है कि मंच पर क्षेत्रीय विधायक बैठे रह जाते हैं और थाना प्रभारी के हाथों कार्यक्रम की शुरुआत हो जाती है.

नेता विपक्ष राबड़ी देवी साफ़ कहती हैं कि नीतीश कुमार ने मंत्रियों और विधायकों को कहीं का नहीं छोड़ा. जनता का कोई काम नहीं हो रहा है और अफसर अपनी मनमर्ज़ी से सरकार चला रहे हैं. उन्होंने कहा कि ग़रीबों को न राशन मिल रहा है, न किरोसिन. इसी तरह लोजपा प्रमुख रामविलास पासवान की राय है कि कुछ चुनिंदा अफसरों की सलाह पर नीतीश सरकार चल रही है. ऐसे लोगों को जनता के दु:ख-दर्द से कोई लेना-देना नहीं है. जन प्रतिनिधियों की आवाज़ दबाई जा रही है. लोकतंत्र के लिए इसे कतई शुभ संदेश नहीं माना जा सकता है.

अब ज़रा नीतीश सरकार में परिवहन मंत्री रह चुके अजीत सिंह की बातों पर ग़ौर करें, मैं नीतीश जी का शुक्रगुज़ार हूं कि उन्होंने मुझे मंत्री पद के दायित्व से मुक्त कर दिया. वरना आज मंत्रियों की ऐसी हैसियत हो चुकी है कि अगर मैं मंत्री होता तो भी इस्तीफ़ा दे देता. अजीत सिंह ने कहा कि मुझे तो पंचम लाल एवं के के पाठक जैसे अफसरों को झेलना पड़ा. लेकिन मैं जब तक विभाग में मंत्री रहा, मैंने पूरी ताक़त से जनता की सेवा की और क़ानून के मुताबिक़ राजपाट चलाया. वहीं मंत्री अश्विनी चौबे इस बात से इंकार करते हैं कि शासन पर नौकरशाह हावी हैं. उन्होंने कहा कि संविधान के अनुसार मंत्री और सचिव अपना-अपना काम कर रहे हैं. एक-दो उदाहरणों से कोई राय नहीं बनाई जा सकती.

सही बात है कि एक-दो मामलों से कोई राय नहीं बनती, पर जब हर तरफ़ दबी ज़ुबान से ही सही, मगर एक ही आवाज़ सुनाई पड़ती हो तो राय ख़ुद-बख़ुद बन जाती है. जन प्रतिनिधियों की राय सर्वोपरि है और लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए हर क़ीमत पर इसकी रक्षा होनी चाहिए. अगर सरकार पर अफसरशाही हावी रही तो यह संभव नहीं हो पाएगा.

नीतीश मिश्रा

समीर कुमार सिंह

लालू प्रसाद यादव

राबड़ी देवी

रामविलास पासवान

feedback@chauthiduniya.com

पूर्व मध्य रेलवे के पटना-बरौनी और पटना-झाझा रेलखंड अब यात्रियों के लिए महफ़ूज नहीं रह गए हैं. सुरक्षा के तमाम दावे इन रेलखंडों पर काफ़ूर हो चुके हैं.

सारण इंजीनियरिंग वर्क्स की स्थापना 1920 में हुई थी. इसे चीनी मिल के रोलरों के निर्माण में महारत हासिल थी. इसके अतिरिक्त यहां चीनी मिल के अन्य उपकरण-पुर्जे भी बनाए जाते थे.

यात्रीगण कृपया ध्यान दें

पटना से झाझा सफ़र करना ख़तरनाक है !

ऐसी कई घटनाएं हो चुकी हैं, जिनमें रेलवे और यात्री दोनों ही परेशानी व नुक़सान से दो-चार हुए. कुछ घटनाओं के विवरण निम्नवत हैं

- 27 सितंबर, 2009. बख्तियारपुर के पास अप साउथ बिहार एक्सप्रेस से दिनदहाड़े युवती को अगवा करने का प्रयास. पुलिस ने दो अपहर्ताओं को दबोचा और युवती को मुक्त कराया.
- 5 सितंबर, 2009. बख्तियारपुर के पास ही देर रात डाउन दानापुर हावड़ा एक्सप्रेस की विकलांग बोगी में डकैती. डाकुओं ने कोलकाता जा रहे खिलाड़ियों की टीम पर गोलीबारी कर कोच को जख्मी किया.
- अगस्त माह की शुरुआत में मौर्य एक्सप्रेस से एक रेल अधिकारी की बेटी रहस्यमय ढंग से लापता हो गई, जिसका मामला बरौनी में दर्ज़ कराया गया.
- 28 जुलाई, 2009. किऊल-जमालपुर रेलखंड पर उरैन स्टेशन के पास पैसेंजर ट्रेन में डकैती. कई यात्रियों के साथ मारपीट. इसी सप्ताह खगड़िया ज़िले के पसराहा स्टेशन के पास 503 कटिहार-हाजीपुर सवारी गाड़ी में अपराधियों ने रेल पुलिस के तीन जवानों को घायल कर उनकी राइफलें लूट लीं.
- 15 जुलाई, 2009. 507 अप झाझा पटना पैसेंजर ट्रेन की दो बोगियों में देर रात एक दर्ज़न लुटेरों ने जमकर लूटपाट की. कई यात्रियों के साथ मारपीट भी की गई.
- 14 जुलाई, 2009. अथमलगोला स्टेशन पर डाउन पटना-सहरसा-कोसी एक्सप्रेस की एसी बोगी में तोड़फोड़ कर आगजनी का प्रयास. यात्रियों को जान बचाकर भागना पड़ा.
- 13 जुलाई, 2009. बाढ़ स्टेशन पर डाउन 506 पटना-बरौनी पैसेंजर ट्रेन में जमकर तोड़फोड़.
- जून के अंतिम सप्ताह में हावड़ा से गोरखपुर जाने वाली अप पूर्वांचल एक्सप्रेस में झाझा स्टेशन पर सवार हुए दर्ज़न भर हथियारबंद अपराधियों ने सुंदर हाल्ट के पास डकैती की घटना अंजाम दी. उन्होंने एसी बोगी में सफ़र कर रहे रेलवे के एक चालक को मौत के घाट भी उतार दिया.
- 3 जुलाई, 2009. मोकामा स्टेशन के पास देर रात डाउन हावड़ा जनता एक्सप्रेस की एक बोगी में अपराधियों ने जमकर लूटपाट की. महिला यात्रियों को भी नहीं छोड़ा गया.
- 15 जून, 2009. बाढ़ स्टेशन पर कुछ यात्रियों को लूट लिया गया. मामला बरौनी में दर्ज़ किया गया.
- 01 जून, 2009. खुशरुपुर स्टेशन पर उग्र भीड़ ने दरभंगा-पटना डाउन एक्सप्रेस और राजगीर सवारी गाड़ी को आग के हवाले कर दिया.
- 30 मई, 2009. यशवंतपुर-मुजफ्फरपुर एक्सप्रेस में डकैती. मामला बरौनी में दर्ज़ किया गया.
- 22 अक्टूबर, 2008. मनसे प्रमुख राज ठाकरे का विरोध करते हुए उग्र छात्रों ने बाढ़ स्टेशन पर अप दुर्ग-पटना एक्सप्रेस की एसी बोगी में आग लगा दी. देखते ही देखते ट्रेन की छह बोगियां जलकर राख हो गईं. इसी दिन छात्रों ने अप सहरसा-पटना-हटिया-कोसी एक्सप्रेस की एसी बोगी में जमकर तोड़फोड़ करने के बाद उसे आग के हवाले कर दिया. कई बोगियां पूरी तरह जलकर राख हो गईं.

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली को पूर्वोत्तर भारत से जोड़ने वाले नई दिल्ली-पटना-हावड़ा रेलमार्ग पर यात्रियों की मुश्किलें लगातार बढ़ती जा रही हैं. बिहार होकर गुजरने वाला यह रेलमार्ग धीरे-धीरे उपद्रवी रेलखंड बनता जा रहा है. पटना से झाझा के बीच पिछले कुछ दिनों से ताबड़तोड़ वारदातों के चलते रेल मंत्रालय और राज्य सरकार के माथे पर पसीना साफ देखा जा रहा है. उपद्रव का दंश ट्रेन से सफर करने वाले यात्रियों को भुगतना पड़ रहा है. रेल विभाग जहां इस मार्ग पर होने वाले उपद्रव और वारदातों का ठीकरा राज्य सरकार के सिर पर फोड़ने की कोशिश में है, वहीं राज्य सरकार के अधिकारी चाहकर भी कुछ नहीं कर पा रहे हैं.

ताजा मामला मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के पैतृक शहर बख्तियारपुर का है, जहां उपद्रवियों ने कई ट्रेनों में जमकर उत्पात मचाकर यात्रियों की जान सांसत में डाल दी. बख्तियारपुर थाने के दारोगा के तबादले का विरोध करते हुए शहर के हज़ारों लोगों ने एक साथ पटना-मोकामा रेलखंड के तीन स्टेशनों पर धावा बोलकर दो ट्रेनों को अपने क़ब्ज़े में ले लिया. उसके बाद उन्होंने दोनों ट्रेनों के इंजन अगवा कर लिए. पहली घटना करौटा स्टेशन पर अंजाम दी गई. उपद्रवियों ने दानापुर से टाटा जाने वाली डाउन सुपर एक्सप्रेस को करौटा स्टेशन पर रोक लिया. फिर बारी-बारी से सभी बोगियों के हौजपाइप काट डाले. इसके बाद ड्राइवर की गर्दन पर फरसा रखकर ट्रेन का इंजन अलग कर क़रीब पांच किलोमीटर दूर ले जाया गया. ठीक इसी समय टेका बीघा स्टेशन पर राजगीर से दानापुर जाने वाली सवारी गाड़ी के साथ भी उपद्रवियों ने कुछ ऐसा ही किया. सालिमपुर हाल्ट पर एक पैसेंजर ट्रेन में भी जमकर उत्पात मचाया गया. अधिकांश यात्रियों ने भागकर अपनी जान बचाई. लगभग चार घंटे तक विरोध का यह नंगानाच चलता रहा, लेकिन इस बीच न तो कहीं रेल पुलिस दिखाई पड़ी और न ही आरपीएफ या ज़िला पुलिस. देश की कई महत्वपूर्ण ट्रेनें विभिन्न स्टेशनों पर सात घंटे से ज़्यादा खड़ी रहीं, जबकि आधा दर्ज़न गाड़ियों का परिचालन रद्द कर दिया गया. ऐसा नहीं है कि रेलवे को निशाना बनाने की यह कोई पहली घटना हो, बल्कि पटना से झाझा के बीच अक्सर ऐसा होता है. पिछले एक साल के अंदर उपद्रवियों ने चार ट्रेनों को आग के हवाले कर दिया. लूट और डकैती की लगभग एक दर्ज़न से अधिक वारदातें हुईं. चलती ट्रेन में पांच लोगों की गोली मारकर हत्या कर दी गई.

पूर्व मध्य रेलवे के पटना-बरौनी और पटना-झाझा रेलखंड अब यात्रियों के लिए महफूज नहीं रह गए हैं. सुरक्षा के तमाम दावे इन रेलखंडों पर काफूर हो चुके हैं. अपराधी बेख़ौफ़ होकर चलती ट्रेन में वारदातों को अंजाम दे रहे हैं. यही नहीं, इन मार्गों पर नशाखुरानी गिरोह भी सक्रिय है. प्रतिदिन दो दर्ज़न से ज़्यादा यात्री इस गिरोह का शिकार बनते हैं. अकेले बरौनी स्टेशन पर ही रोज़ाना ऐसे आधा दर्ज़न से ज़्यादा यात्रियों को इलाज के लिए ट्रेनों से उतारा जाता है.

दिव्या कुमारी
feedback@chauthiduniya.com

मढ़ौरा औद्योगिक क्षेत्र

बदहाली का ज़िम्मेदार कौन ?

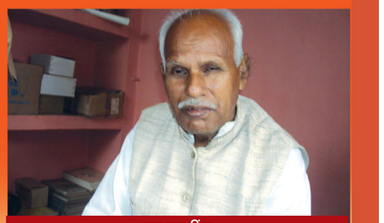

राम बाबू सिंह

सारण ज़िले में स्थित औद्योगिक क्षेत्र मढ़ौरा अपनी बदहाली से उबर नहीं पा रहा है. बिहार ही नहीं, पूरी दुनिया में अपनी गुणवत्ता और उत्पादकता का लोहा मनवा चुके यहां के कल-कारखानों के दिन न जाने कब बहुरेंगे? यही चिंता क्षेत्र और आसपास के लोगों को सता रही है. मढ़ौरा चीनी मिल, सारण इंजीनियरिंग कंपनी, मढ़ौरा डिस्टलरी फैक्ट्री और मढ़ौरा मोर्टन कंफेक्शनरी में सभी तरह के उत्पादन कार्य ठप हैं. इनसे जुड़े ढाई-तीन हज़ार मज़दूर एवं कर्मचारी इन दिनों भुखमरी से जूझ रहे हैं. मढ़ौरा चीनी मिल की बुनियाद 1904 में रखी गई थी. यह हिंदुस्तान की दूसरी चीनी मिल थी. इसके पहले एकमात्र चीनी मिल उड़ीसा राज्य के ओस्का में थी. मढ़ौरा चीनी मिल की गणना भारत की बेहतरीन चीनी मिलों में की जाती थी. सारण गजेटियर के मुताबिक़, देश को आजादी मिलने के पहले इस चीनी मिल में लगभग तीन हज़ार मज़दूर-कर्मचारी कार्यरत थे. बाद में कुप्रबंधन एवं अनियमितताओं के चलते इनकी संख्या मात्र 950 रह गई. इनमें भी 300 स्थायी एवं 650 मौसमी हैं. यह मिल ब्रिटिश इंडिया कॉरपोरेशन नामक प्रबंधन द्वारा संचालित होती थी. बाद में यह भारत सरकार का एक उपक्रम बन गई. मज़दूर नेता रामबाबू सिंह बताते हैं कि इस ज़िले में नील की खेती के बाद सबसे ज़्यादा महत्व गन्ने की खेती को दिया गया, ताकि चीनी के मामले में ब्रिटिश सरकार की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके. इस मिल को ख़ूबसूरत रवादार चीनी बनाने का गौरव हासिल था. मढ़ौरा निवासियों ने बताया कि मिल बंद होने से पहले क़रीब दो करोड़ रुपये का घाटा उठाना पड़ रहा था. 1955 के बाद जहां मज़दूरों की भविष्य निधि का नियोजक अंशदान जमा नहीं किया गया, वहीं राजनीतिक दलों के दबाव से नियुक्त प्रशासकों को बतौर भुगतान लाखों रुपये ख़र्च कर दिए गए.

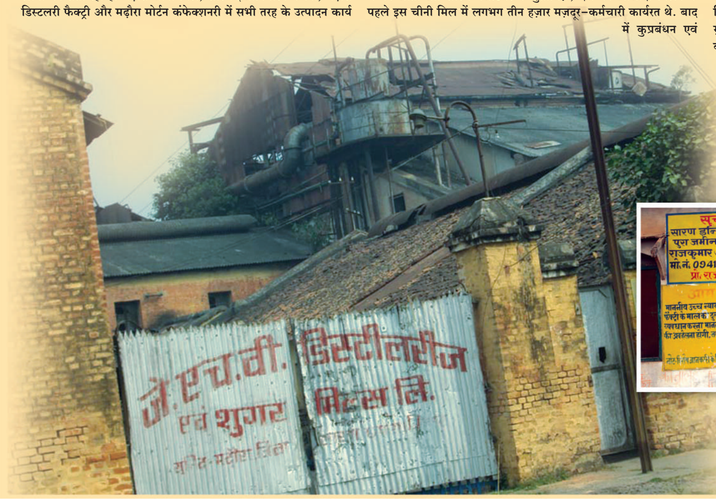

मढ़ौरा फैक्ट्री मज़दूर संघ के महामंत्री कमल किशोर सिंह का कहना है कि इस चीनी मिल के पास एक हज़ार कृषि फार्म हैं, जो अरना, रामकोलवां और मढ़ौरा में स्थित हैं. वहां के मज़दूर इतने वर्षों बाद भी नियमित नहीं हो सके हैं. इस मिल के पास स्टीम इंजन संचालित 16 ट्रॉलियां थीं, जिनमें रामकोलवां, सोनहो, बनकटवा और अरना से गन्ने की ढुलाई होती थी, परंतु निजी ट्रक मालिकों की मिलीभगत के चलते मिल के पदाधिकारियों ने ट्रॉली द्वारा गन्ना ढुलाई समाप्त कर दी. नतीजतन, गन्ने की ढुलाई ट्रकों से की जाने लगी, जिससे मिल को प्रतिवर्ष लाखों रुपये का नुक़सान उठाना पड़ा. इस मिल के बंद हो जाने से जहां एक ओर मज़दूर बेकार हो गए हैं, वहीं दूसरी ओर किसान भी भुखमरी की कगार पर पहुंच चुके हैं. ज़िले के तरैया, पानापुर, इसुआपुर, अमनौर, मढ़ौरा, सोनहो, परसा, दरियापुर, अरना और रामकोलवां की अधिकांश ज़मीनें, जो गन्ने की खेती के लायक थीं, आज वीरान पड़ी हैं. जिला परिषद के पूर्व उपाध्यक्ष ब्रज किशोर सिंह का कहना है कि 1996 में हरिहर क्षेत्र सोनपुर में गंगा नदी में प्रस्तावित रेल पुल के शिलान्यास के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री एच डी देवगौड़ा ने सांसद राजीव प्रताप रूड़ी के निवेदन पर मढ़ौरा चीनी मिल के पुनर्वास हेतु 50 लाख रुपये देने की घोषणा की थी, पर कुछ भी नहीं हो पाया.

मज़दूर नेता रामबाबू सिंह ने बताया कि 1956 से 1968 तक इस मिल पर बी पी जजोरिया और फिर 1968-70 तक गंभीर चंद्र मोथरा एवं पारिचंद्र मोथरा नामक उद्योगपतियों का स्वामित्व रहा. इसी बीच बीआईसी ग्रुप की कई इकाइयों ने घाटा होने के कारण इस चीनी मिल को एक बोर्ड बनाकर कपड़ा मंत्रालय के अधीन कर दिया. तबसे यह मिल लगातार पिछड़ती चली गई. इसके पतन का मुख्य कारण पराजित जनप्रतिनिधियों एवं ग़ैर तकनीकी लोगों को इसका चेयरमैन बनाया जाना था, जिन्होंने इसके विकास की जगह भाई-भतीजावाद और भेदभाव की नीति को प्राथमिकता दी. उस दौरान जमकर वित्तीय अनियमितता और लूटपाट चलती रही. जब मिल खोखली हो गई तो 1990 के आसपास बिहार एवं उत्तर प्रदेश सरकार से इसे बीमार घोषित कराकर बीआईएफआर में पुन: इसके नवीनीकरण एवं सौंदर्यीकरण हेतु प्रस्ताव भेज दिया गया. बीआईएफआर ने इस मिल को बेचने हेतु कई बार निविदाएं भी आमंत्रित कीं, लेकिन इसे ख़रीदने के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ.

इसका एक कारण यह भी था कि बीआईसी कानपुर शुगर वर्क्स पर बैंकों और किसानों-मज़दूरों का लगभग 84 करोड़ रुपया बकाया था, जिसमें मढ़ौरा चीनी मिल पर बकाया दस करोड़ रुपये भी शामिल थे. 1996-97 में लखनऊ की एक कंपनी गंगोत्री इंटरप्राइजेज ने बीआईएफआर के सामने इस मिल को चलाने का प्रस्ताव रखा था. हालांकि इसमें किसानों व मज़दूरों के हितों को दरकिनार कर दिया गया था. बीआईएफआर ने 23 दिसंबर 1998 एवं 2 जनवरी 1999 को व्यवस्थापकों को निर्देश दिया कि वे मिल का स्वामित्व गंगोत्री इंटरप्राइजेज के हाथों में सौंप दें. यह प्रक्रिया 13 जनवरी 1999 को पूरी कर ली गई, मगर इसके बाद भी मिल की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ. नतीजतन, सैकड़ों मज़दूर बेकार और किसान बर्बाद हो गए. मज़दूर किशोरी राय, विंदेश्वरी साह एवं कृपाशंकर उपाध्याय जैसे अनेक लोगों ने आर्थिक तंगी के कारण मौत को गले लगा लिया. आज भी कौशल किशोर सिंह, ओमप्रकाश सिन्हा, अखिलेश श्रीवास्तव, रामचरित्र शर्मा, राकेश सिंह, अशोक सिंह और ताराचंद्र राय जैसे सैकड़ों मज़दूर आर्थिक तंगी से दो-चार हैं.

सारण इंजीनियरिंग वर्क्स की स्थापना 1920 में हुई थी. इसे चीनी मिल के रोलरों के निर्माण में महारत हासिल थी. इसके अतिरिक्त यहां चीनी मिल के अन्य उपकरण-पुर्जे भी बनाए जाते थे. इस फैक्ट्री में रक्षा मंत्रालय, डीजल लोकोमोटिव एवं अन्य इकाइयों के लिए विभिन्न सामग्रियां तैयार होती थीं. यहां निर्मित मशीनों-उपकरणों का निर्यात नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका, सूडान, यूगांडा और अफ्रीका आदि देशों में किया जाता था. 1972 से 1980 के बीच इस फैक्ट्री को इतना लाभ हुआ कि बैंकों के ऋण से मुक्त होने वाली भारत की यह पहली औद्योगिक इकाई बन गई. लेकिन, 1986 से यह फैक्ट्री कुप्रबंधन का शिकार हो गई और अंतत: 1995 में इसमें ताला ही लग गया. यही हाल मढ़ौरा की शराब फैक्ट्री का हुआ. चीनी मिल की स्थापना के बाद छोआ से शराब बनाने के लिए मढ़ौरा डिस्टलरी कंपनी की स्थापना 1934-35 में की गई थी, जहां सवा सौ से ज़्यादा मज़दूर कार्यरत थे. यहां प्रतिदिन 30 से 35 हज़ार लीटर शराब बनाई जाती थी. राज्य सरकार को यहां से प्रतिवर्ष राजस्व के रूप में 12 करोड़ रुपये से ज़्यादा की धनराशि मिलती थी, लेकिन 1992 में पर्यावरण एवं प्रदूषण विभाग ने जल प्रदूषण संयंत्र न होने के कारण इसे बंद करा दिया और इसके मज़दूर-कर्मचारी सड़क पर आ गए.

क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में चीनी के उत्पादन एवं आसपास के ग्रामीण इलाक़ों में बड़े पैमाने पर दूध की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए बिरला घराने ने यहां टॉफियां बनाने के लिए मॉर्टन कंफेक्शनरी की स्थापना की, लेकिन कुप्रबंधन एवं अनियमितताओं के कारण यह कंपनी भी धीरे-धीरे बंदी के कगार पर पहुंच गई. किसान कमलदेव तिवारी बताते हैं कि 1929 में स्थापित इस कंफेक्शनरी से निर्मित टॉफियां अपने स्वाद के चलते देश-विदेश में विख्यात थीं. इस कंफेक्शनरी को एक बार 1975 में मज़दूरों और टैक्स आदि से संबंधित विवाद के चलते बंद होना पड़ा था, लेकिन तब इसे कुछ समय बाद चालू कर दिया गया था. फिर 1992-93 से लगातार घाटा होने के कारण 1998 में इसे स्थायी रूप से बंद कर दिया गया. भाजपा नेता एवं राज्यसभा सदस्य राजीव प्रताप रूड़ी ने मढ़ौरा के सभी उद्योगों को खुलवाने के लिए कई प्रयास किए, मगर उन्हें सफलता हासिल नहीं हुई. राजद प्रमुख लालू प्रसाद ने मुख्यमंत्री बनने के बाद एक अप्रैल 1990 को यह घोषणा की थी कि वह इस औद्योगिक क्षेत्र में कभी भी वीरानी नहीं आने देंगे, पर अब यहां केवल सरकारी कार्यालय ही रह गए हैं. नीतीश सरकार के कार्यकाल में भी चीनी मिल को फिर से चालू कराने की पहल हुई, पर परिणाम उत्साहजनक नहीं रहा. अभी भी कई मज़दूर नेता इन फैक्ट्री-कारखानों को खुलवाने के लिए न्यायालय का दरवाज़ा खटखटा रहे हैं.

निर्भय कुमार
feedback@chauthiduniya.com

झारखंड चुनाव

महिला उम्मीदवार इतनी कम क्यों ?

कोई भी राजनीतिक दल आधी आबादी यानी महिलाओं को उचित भागीदारी देने को तैयार नहीं है. यह बात झारखंड विधानसभा चुनाव में विभिन्न दलों के उम्मीदवारों की सूची ने साफ़ कर दी है. यद्यपि महिलाओं को 33 प्रतिशत भागीदारी देने पर सैद्धांतिक रूप से सहमति बन चुकी है, लेकिन ज़मीनी हक़ीक़त इसके ठीक विपरीत है. चार बड़ी पार्टियों ने मात्र 16 महिला उम्मीदवारों को टिकट दिए हैं. कांग्रेस ने सबसे कम यानी दो और भाजपा ने सबसे अधिक यानी सात महिला उम्मीदवारों को टिकट दिए हैं. झामुमो ने तीन और जदयू ने मात्र एक महिला प्रत्याशी को टिकट दिया है. वर्ष 2005 के विधानसभा चुनाव में भाजपा ने 63 सीटों पर चुनाव लड़ा था, जिनमें उसने मात्र पांच महिला उम्मीदवार उतारे थे. बसपा ने सात और भाकपा ने तीन महिला उम्मीदवार मैदान उतारे थे. भाकपा (मा) और कांग्रेस ने एक-एक महिला उम्मीदवार को खड़ा किया था. जबकि 13 सीटों पर चुनाव लड़ने वाली राकांपा ने एक भी महिला को टिकट नहीं दिया था. इस तरह राष्ट्रीय दलों के 220 प्रत्याशियों में मात्र 13 महिलाओं को भागीदारी मिली थी. क्षेत्रीय दलों में जदयू ने 18 में 3, झामुमो ने 49 में 7, राजद ने 51 में तीन महिला उम्मीदवार उतारे थे. पिछली बार पांच महिलाएं चुनाव जीती थीं. लिट्टीपाड़ा से झामुमो के टिकट पर सुशीला हांसदा, कोडरमा से राजद के टिकट पर अन्नपूर्णा देवी, निरसा से फारवर्ड ब्लॉक के टिकट पर अपर्णा सेन गुप्ता, झरिया से भाजपा के टिकट पर कुंती देवी और मनोहरपुर से यूजीडीपी के टिकट पर जोबा मांझी चुनाव जीती थीं. इनमें जोबा मांझी और अपर्णा सेन को मंत्री बनने का सौभाग्य भी मिला था. पिछली बार 73 महिलाएं निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में मैदान में थीं. वे जीत तो नहीं सकीं, लेकिन मैदान में उतर कर उन्होंने अपने अधिकारों के लिए सचेत होने का संकेत ज़रूर दिया था. लेकिन आबादी के अनुरूप भागीदारी पाने के लिए महिलाओं को काफ़ी जद्दोजहद करनी होगी, झारखंड विधानसभा चुनाव के लिए विभिन्न दलों के उम्मीदवारों की सूची तो यही संदेश देती है.

नवलेश नवल
feedback@chauthiduniya.com

अन्नपूर्णा देवी

विधानसभा चुनाव-2005 के प्रत्याशियों का ब्यौरा

दल	कुल प्रत्याशी	पुरुष	महिला
भाजपा	63	58	05
बसपा	75	68	07
सीपीआई	15	12	03
सीपीएम	13	12	01
कांग्रेस	41	40	01
एनसीपी	13	13	00
जदयू	18	15	03
झामुमो	49	42	07
राजद	51	48	03
अन्य दल	474	437	37
निर्दलीय	660	624	36
कुल	1472	1369	103

दिल्ली नहीं तो रांची ही सही

बंधु टिर्की

कमलेश सिंह

इस बार विभिन्न दलों से चुनाव लड़ रहे क़रीब डेढ़ दर्ज़न से अधिक उम्मीदवार ऐसे हैं, जिन्होंने लोकसभा चुनाव में भी अपना भाग्य आज़माया था, लेकिन उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा था.

ऐसे प्रत्याशियों में जामताड़ा से फुरकान अंसारी, विश्रामपुर से चंद्रशेखर दुबे, चाईबासा से बागुन सुंब्रई, मनिका से रामेश्वर उरांव, राजमहल से थॉमस हांसदा, दुमका से स्टीफन मरांडी, खूंटी से नियेल तिर्की, हज़ारीबाग से सौरभ नारायण सिंह और छतरपुर से राधाकृष्ण किशोर कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ रहे हैं. जबकि दूसरी ओर मांडू से टेकलाल महतो, बरहेट से हेमलाल मुर्मु और दुमका से हेमंत सोरेन झामुमो के प्रत्याशी हैं. इसके अलावा पोड़ैया हाट से प्रदीप यादव, गिरिडीह से सबा अहमद और बोकारो से समरेश सिंह झाविमो के उम्मीदवार हैं. अरविंद सिंह जमशेदपुर से अपना भाग्य आज़मा रहे हैं. भाकपा से सांसद रह चुके और पिछले चुनाव में पराजित भुवनेश्वर मेहता बरकट्ठा से चुनाव लड़ रहे हैं. दिल्ली नहीं तो रांची ही सही के अंदाज़ में उक्त प्रत्याशी मतदाताओं के पास जा रहे हैं. इनमें से कई लोग पूर्व में लोकसभा सदस्य रह चुके हैं. लोकसभा के लिए उन्हें पांच साल तक इंतज़ार करना पड़ता. यदि इस अवधि को वे जनता के बीच अपना आधार मज़बूत करने और उसकी सेवा में व्यतीत करते तो अगले लोकसभा चुनाव में उनकी स्थिति काफ़ी बेहतर होती, लेकिन झारखंडी नेता जनता पर कम और चुनावी समीकरण एवं हथकंडों पर ज़्यादा विश्वास करते हैं. फुरकान अंसारी, चंद्रशेखर दुबे, बागुन सुंब्रई, रामेश्वर उरांव, टेकलाल महतो, भुवनेश्वर मेहता, हेमलाल मुर्मु, शैलेंद्र महतो, हेमंत सोरेन, स्टीफन मरांडी और प्रदीप यादव आदि 2004 के लोकसभा चुनाव में जीत हासिल कर सांसद रह चुके हैं, लेकिन 2009 के लोकसभा चुनाव में मतदाताओं ने इन्हें नकार दिया.

कांग्रेस खोई ज़मीन हासिल करने में जुटी

गठबंधन की राजनीति से तौबा करने के बाद कांग्रेस समस्तीपुर ज़िले में अपनी ज़मीन मज़बूत करने में जुटी है. यह ज़िला कभी कांग्रेस का गढ़ रह चुका है. लिहाजा पटना से लेकर समस्तीपुर में बैठे कांग्रेसी आगामी विधानसभा चुनाव को एक चुनौती के तौर ले रहे हैं. विभूतिपुर, उजियारपुर, सरायरंजन, रोसड़ा, कल्याणपुर और मोहिउद्दीनगर विधानसभा क्षेत्रों में अभी से विशेष तैयारियां की जा रही हैं. यहां से पार्टी के जीतने का रिकॉर्ड काफ़ी पुराना रहा है. इसलिए पार्टी इन क्षेत्रों को और मज़बूत करने की कोशिश में लगी है. लोजपा के पूर्व विधायक प्रो. सुशील कुमार राय के कांग्रेस में शामिल हो जाने से ज़िले का राजनीतिक परिदृश्य धीरे-धीरे बदलता जा रहा है. जननायक कर्पूरी ठाकुर की जन्म और कर्मभूमि समस्तीपुर में शुरू से ही कांग्रेस एवं समाजवादियों का दबदबा रहा है. ग़ौरतलब है कि आज तक ज़िले की संसदीय एवं विधानसभाई राजनीति में भाजपा का खाता तक नहीं खुला है. ज़िले में पार्टी का खाता खोलने की चाह लेकर राज्य के उप मुख्यमंत्री एवं भाजपा के शीर्ष नेता सुशील कुमार मोदी बराबर यहां का दौरा करते हैं. पिछले चुनाव में समस्तीपुर (सु.) लोकसभा सीट से डॉ. अशोक कुमार के चुनाव लड़ने के कारण ही लोजपा के पूर्व सांसद एवं दलित सेना के राष्ट्रीय अध्यक्ष रामचंद्र पासवान को जद यू प्रत्याशी महेश्वर हजारी से शिक़स्त झेलनी पड़ी थी.

राज्य विधानसभा में कांग्रेस विधायक दल के नेता डॉ. अशोक कुमार ज़िले के एकमात्र कांग्रेसी विधायक हैं. राजद-लोजपा ज़िले की दस विधानसभा सीटों में से सात पर क़ब्ज़ा किए हुए हैं. कांग्रेस ज़िलाध्यक्ष रामकलेवर प्रसाद सिंह ने बताया कि पार्टी सभी दस विधानसभा सीटों पर अपने प्रत्याशी उतार कर पूरे दम-खम के साथ चुनाव लड़ेगी. हाल में संपन्न विधानसभा उपचुनाव में ज़िले की दो विधानसभा सीटों कल्याणपुर एवं वारिसनगर पर पार्टी ने अपने उम्मीदवार उतारे थे, जिसमें कल्याणपुर में हमारी स्थिति अच्छी रही और वारिसनगर में भी हमारे उम्मीदवार ने कड़ी चुनौती पेश की. हार से विचलित हुए बिना पार्टी ने आगामी चुनाव में कम से कम सात सीटें जीतने का लक्ष्य रखा है. वर्ष 1985 में स्व. अनुग्रह नारायण सिंह के नेतृत्व में समस्तीपुर की दस विधानसभा सीटों में से छह पर कांग्रेस के प्रत्याशी जीते थे. ज़िले में हर बूथ पर बैठक शुरू कर दी गई है और आगामी दिसंबर में एक बड़े सम्मेलन की तैयारी की जा रही है, जिसमें देश एवं प्रदेश के दिग्गज नेता हिस्सा लेंगे.

शील कुमार राय

रामकृपाल सिंह

दरअसल, कांग्रेस को लग रहा है कि अगर वह 1985 की कहानी दोहराने में कामयाब रही तो बिहार की सत्ता उससे ज़्यादा दूर नहीं होगी. पार्टी का आकलन है कि ज़िले का सामाजिक समीकरण उसके बिल्कुल अनुकूल है. सही रणनीति के तहत आगे बढ़ने पर कोई वजह नहीं है कि सफलता न मिले. दिसंबर में सम्मेलन करके पार्टी अपनी कमज़ोरी और ताक़त का आकलन कर लेना चाहती है. बताया जाता है कि दिल्ली और पटना में बैठे नेता भी समस्तीपुर में पार्टी को फिर से ज़िंदा करने में काफ़ी रुचि ले रहे हैं. अगर सब कुछ योजना के अनुसार हुआ तो कांग्रेस ज़िले में एक मज़बूत राजनीतिक चुनौती पेश कर सकती है.

विकास कुमार
feedback@chauthiduniya.com

समाज और गुरुआ विधानसभा क्षेत्र के लिए समर्पित युवा समाजसेवी

अरविन्द कुमार

ने ठाना है लोगों के सहयोग से गुरारू, परैया, गुरूआ में कोई भी मंदिर, मस्जिद, सार्वजनिक स्थल नहीं रहेगा लाईट व घड़ी के बिना।
नहीं रूकेगी क्षेत्र के किसी भी गरीब लड़की की शादी।
नहीं रहेगा कोई लाचार, बेबस और प्यासा,
नहीं रूकेगा किसी गरीब की बीमारी का ईलाज।
लोगों के सहयोग से सबका सहारा अरविन्द करायेगा सब काम

चौथी दुनिया
दिल्ली, 30 नवंबर–6 दिसंबर 2009

साधिका के मुताबिक़, साउथ में शिफ्ट हो जाने के कारण कई बड़े प्रोजेक्ट उनके हाथ से निकल गए. ख़ैर, अब वह संभल गई हैं.

साधिका रंधावा : ग़लतियों से सीखा सबक

अक्सर देखा जाता है कि एक ही समय में कई जगह हाथ मारने के चक्कर में कुछ भी हासिल नहीं होता. इस बात का सबसे बेहतरीन उदाहरण हैं भोजपुरी फ़िल्मों की सेक्सी बाला साधिका रंधावा. 1993 में जयपुर क्वीन का ख़िताब जीतकर ग्लैमर जगत में एंट्री करने वाली साधिका आज भोजपुरी फिल्मों की सफल अभिनेत्री हैं. उनकी पिछली फ़िल्में *प्यार के बंधन* और *पूरब* की रिकॉर्ड तोड़ सफलता ने उन्हें नंबर वन की कतार में लाकर खड़ा कर दिया है, लेकिन साधिका को यह मुक़ाम इतनी आसानी से हासिल नहीं हुआ. उन्होंने बॉलीवुड और दक्षिण की फ़िल्मों में भी अपनी क़िस्मत आज़माई थी, लेकिन वहां अपेक्षित सफलता नहीं मिली.

साधिका कहती हैं कि उन्होंने अपने करियर में कई ग़लतियां कीं और उसका ख़ामियाज़ा भी उन्हें भुगतना पड़ा. मालूम हो कि साधिका ने सावन कुमार की हिंदी फिल्म *सलमा पे दिल आ गया* से बॉलीवुड में अपने क़दम रखे थे. उसके बाद फिल्म *सत्ता* में एक आइटम सांग में उनकी मादक अदाओं का जादू नज़र आया था, पर बात न बनते देख उन्होंने दक्षिण की कुछ फ़िल्मों के ऑफर स्वीकार कर लिए. बस इसी को वह अपने करियर की सबसे बड़ी भूल मानती हैं. साधिका के मुताबिक़, साउथ में शिफ्ट हो जाने के कारण कई बड़े प्रोजेक्ट उनके हाथ से निकल गए. ख़ैर, अब वह संभल गई हैं और भोजपुरी फ़िल्मों में अपना पूरा ध्यान लगा रही हैं. इस समय उनके खाते में कई बड़ी फ़िल्में हैं, जिनमें भोजपुरी सिनेमा के सुपर स्टार रवि किशन और मनोज तिवारी के साथ निर्देशक अभय सिन्हा की फिल्म *जनम जनम का साथ* और *पांडव* आदि प्रमुख हैं. इतने बड़े कलाकारों के साथ काम करने से साधिका का उत्साहित होना लाज़िमी है. हम भी यही कहेंगे कि अब इधर-उधर हाथ-पैर मारने की जगह साधिका भोजपुरी फ़िल्मों में अपना मन रमाएं, ताकि दर्शक उनकी ख़ूबसूरत अदाओं का दीदार करते रहें.

दुर्गावती जलाशय परियोजना

तीस साल बाद भी खेत सूखे हैं

साल 1976 के जून माह की बात है. रोहतास ज़िले के दक्षिणी हिस्से में कैमूर पहाड़ी की दो चोटियों को जोड़ते हुए दुर्गावती जलाशय परियोजना का निर्माण कार्य शुरू हुआ था. जिस जोशोख़रोश के साथ इस कार्य का शुभारंभ हुआ था, उसे देखकर तो यही लगा था कि रोहतास एवं कैमूर के लगभग चार लाख किसान परिवारों के दिन अब बहुरने ही वाले हैं. उस समय केंद्र सरकार में कैबिनेट मंत्री बाबू जगजीवन राम एवं परियोजना के अधीक्षण अभियंता के सी मेहता ने उद्घाटन के बाद जो घोषणाएं कीं, उससे यही लगा कि खेतों को पानी मिलने में बस चंद महीनों का समय बाक़ी है. लेकिन इंतज़ार के चंद महीने कई वर्षों में बदल गए और देखते ही देखते धीरे-धीरे तीन दशक का समय निकल गया. मगर, स्थिति यह है कि न तो परियोजना पूरी हुई और न ही खेतों को पानी ही मिला. केंद्र में कई सरकारें आईं और गईं. राज्य में भी आधा दर्ज़न से ज़्यादा सरकारें गठित हो चुकीं. कभी इस योजना के मद में राशि की कमी का रोना रोया गया तो कभी विस्थापितों की समस्या की दुहाई दी गई. उसके बाद वन विभाग की अड़चनों ने इस परियोजना पर ग्रहण लगा दिया. रही सही कसर इस परियोजना पर होने वाली राजनीति ने पूरी कर दी. 1976 में उद्घाटन के दिन इस परियोजना का जो प्राक्कलन तैयार किया गया था, उसके अनुसार इसे पूरा होने में लगभग 25 करोड़ की राशि खर्च होनी थी. उसके बाद जब योजना तैयार होने में देर हुई तो इस राशि को बढ़ाकर 85 करोड़ रुपये कर दिया गया. योजना फिर भी पूरी नहीं हुई तो 1985 में इसके लिए अनुमानित राशि 165 करोड़ रुपये घोषित हुई और पैसा जारी भी कर दिया गया. इसी बीच इस परियोजना पर वन विभाग के अधिनियम का ग्रहण लगना शुरू हुआ और वन विभाग ने जल संसाधन विभाग से अपने 27 हज़ार हेक्टेयर वन क्षेत्र भूमि का मुआवज़ा मांगा. जानकारी हो कि वन विभाग ने जिस ज़मीन पर दावा प्रस्तुत किया था, वह ज़मीन परियोजना के जलग्रहण क्षेत्र में पड़ रही थी. जल संसाधन विभाग द्वारा जब तक इस पर पहल की जाती, तब तक परियोजना की लागत बढ़ कर 360 करोड़ रुपये हो गई और धीरे-धीरे दस वर्ष का समय निकल गया. इसी बीच 1999 में इस परियोजना के लिए बन रहे स्पील्वे पर निकटवर्ती शेरगढ़ पहाड़ का एक हिस्सा टूटकर गिर गया. काम बाधित हुआ और इस परियोजना की मशीनों को विभाग ने दूसरे परियोजना स्थलों पर स्थानांतरित करना शुरू कर दिया. वर्ष 2002 में पुन: इस परियोजना का काम आरंभ हुआ और तब तक इसकी अनुमानित लागत 425 करोड़ रुपये तक पहुंच गया. जैसे ही तीसरी बार इस परियोजना का कार्य शुरू हुआ तो विस्थापितों ने अपनी ज़मीन, नौकरी एवं मुआवज़े को लेकर दो महीने तक कार्य को ठप कर दिया. काफ़ी मान मनौव्वल के बाद रोहतास व कैमूर के प्रशासन ने विस्थापितों को समझाया और काम शुरू हुआ तो पुन: वन विभाग ने नदी के मुहाने पर चल रहे कार्य को यह कह कर बंद करा दिया कि अभी तक इसकी मुआवज़ा राशि विभाग ने नहीं दी है. इसके बाद से अब तक परियोजना का कार्य बंद पड़ा है. वर्ष 2008 में स्थानीय विधायक ललन पासवान ने सुप्रीम कोर्ट में इंटरभेनर पेटिशन दायर की. तब सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने एक जनसभा को संबोधित करते हुए इस परियोजना में हो रहे विलंब के कारणों को उजागर करते हुए वर्ष 2009 के 2 जनवरी को श्वेत पत्र जारी करने की घोषणा की, लेकिन आज तक कुछ भी नहीं हुआ. तीन दशकों से इस क्षेत्र के साढ़े चार लाख किसान परिवार परियोजना के पूरा होने का इंतज़ार कर रहे हैं.

ममता चौहान
feedback@chauthiduniya.com

झूठे वादों से वैश्य समुदाय नाराज़

आगामी विधानसभा चुनाव को लेकर अभी से ही वैश्यों को एकजुट करने की कवायद शुरू हो गई है. ग़ौरतलब है कि पिछले विधानसभा व लोकसभा चुनाव में लगभग सभी दलों ने वैश्यों को उचित भागीदारी देने का वादा किया था, लेकिन इस समुदाय के हाथ निराशा ही हाथ लगी. हालांकि इस बार सियासी दल वैश्यों को ठगे नहीं, इसके लिए इस समुदाय के नेता काफ़ी सक्रिय हो गए हैं. पिछले दिनों गया में आयोजित एक सम्मेलन में वैश्य समुदाय को एकजुट करने की ज़रूरत पर ज़ोर दिया गया. इस सम्मेलन के ज़रिए सियासी दलों को यह संदेश देने की कोशिश की गई कि इस बार ग़लती नहीं दोहराई जाएगी. इस बार वैश्य समुदाय पूरी तैयारी के साथ चुनावी अखाड़े में कूदेगा. सम्मेलन में बिहार के पथ निर्माण मंत्री डॉ. प्रेम कुमार ने कहा कि आपसी मतभेद को भूलकर आज समाज को एक सूत्र में बांधने की ज़रूरत है, तभी इस समाज की पहचान शिक्षा, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में बनेगी. उन्होंने मध्यदेशीय वैश्य को जनसंख्या के हिसाब से राजनीति में प्रतिनिधित्व नहीं मिलने पर अफ़सोस जताया.

पंचायती राज्यमंत्री हरिप्रसाद साह ने मध्यदेशीय वैश्यों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति पर गंभीर चर्चा के बाद कहा कि जीना है तो मरना सीखो, कदम-कदम पर लड़ना सीखो उन्होंने कहा कि वैश्य जाति आज छप्पन उपजातियों में बंटकर रह गया है. जिस दिन सभी उपजातियां एक हो जाएंगी तो दुनिया की कोई भी ताक़त इससे मुक़ाबला नहीं कर सकती. मंत्री ने कहा कि यह दुर्भाग्य ही है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और डॉ. राम मनोहर लोहिया के वंशज आज हक़ के लिए भीख मांग रहे हैं. उन्होंने वैश्यों को जात नहीं जमात की बात करने की सलाह दी. उनके इस राष्ट्रीय सम्मेलन में विधायक प्रमोद कुमार गुप्ता, पिछड़े वर्ग आयोग के सदस्य जगनाथ प्रसाद गुप्ता, सभा के अध्यक्ष मोहन लाल साव, महामंत्री चन्द्रिका प्रसाद, पूर्व मंत्री और विधायक सुरेन्द्र प्रसाद यादव ने दो दिवसीय सम्मेलन को संबोधित कर वैश्यों को एकजुट होने का आह्वान किया. सम्मेलन के अंतिम दिन अखिल भारतीय मध्यदेशीय वैश्य सभा के राष्ट्रीय कमेटी का गठन भी किया गया. कमेटी के चुनाव में बोकारो के राजीव रंजन अध्यक्ष तथा पटना के हर्षचंद गुप्ता महासचिव और गया के अनिल कुमार को राष्ट्रीय कोषाध्यक्ष चुना गया.

सुनील कुमार सिंह
feedback@chauthiduniya.com

झारखंड, छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड, को अटलजी ने बनाया एक साथ
फिर क्यों पिछड़ा गया झारखंड ?
कौन है जिम्मेदार

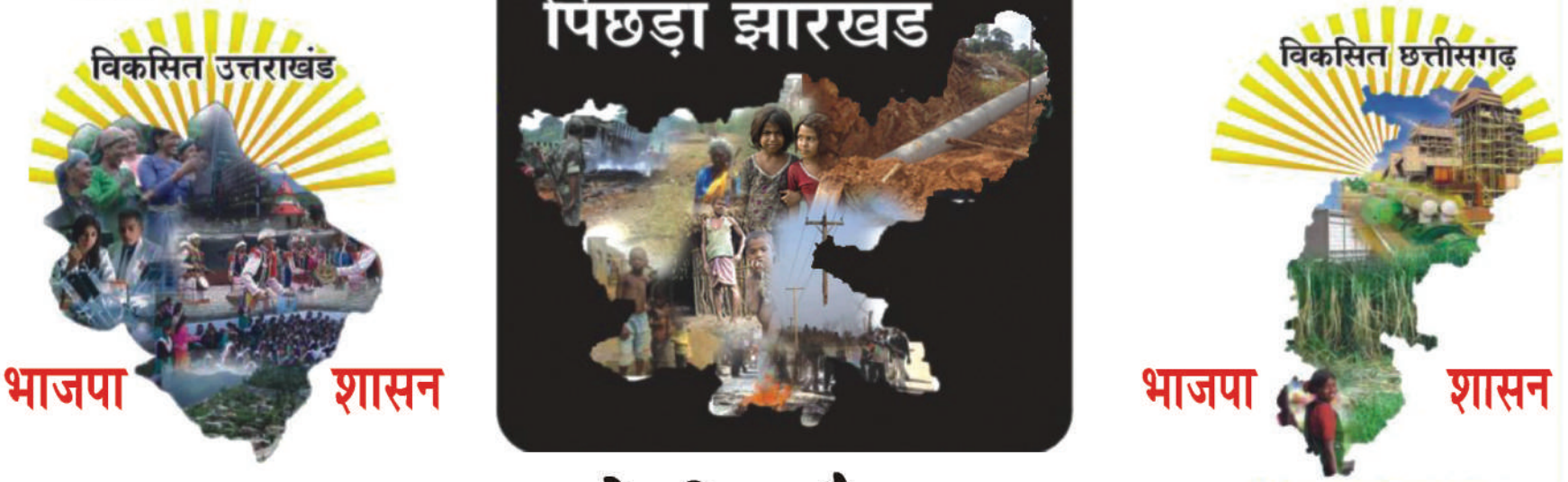

दोषी कौन ?
कांग्रेस + कोड़ा + झामुमो + राजद = बरबादी

बदलें बदहाली को
खुशहाली में

कमल पर वोट दे

झारखंड बचाओ : भाजपा लाओ
भाजपा, झारखंड द्वारा जारी